चकमक

अप्रैल, 1998 बाल विज्ञान पत्रिका रु. 7.00

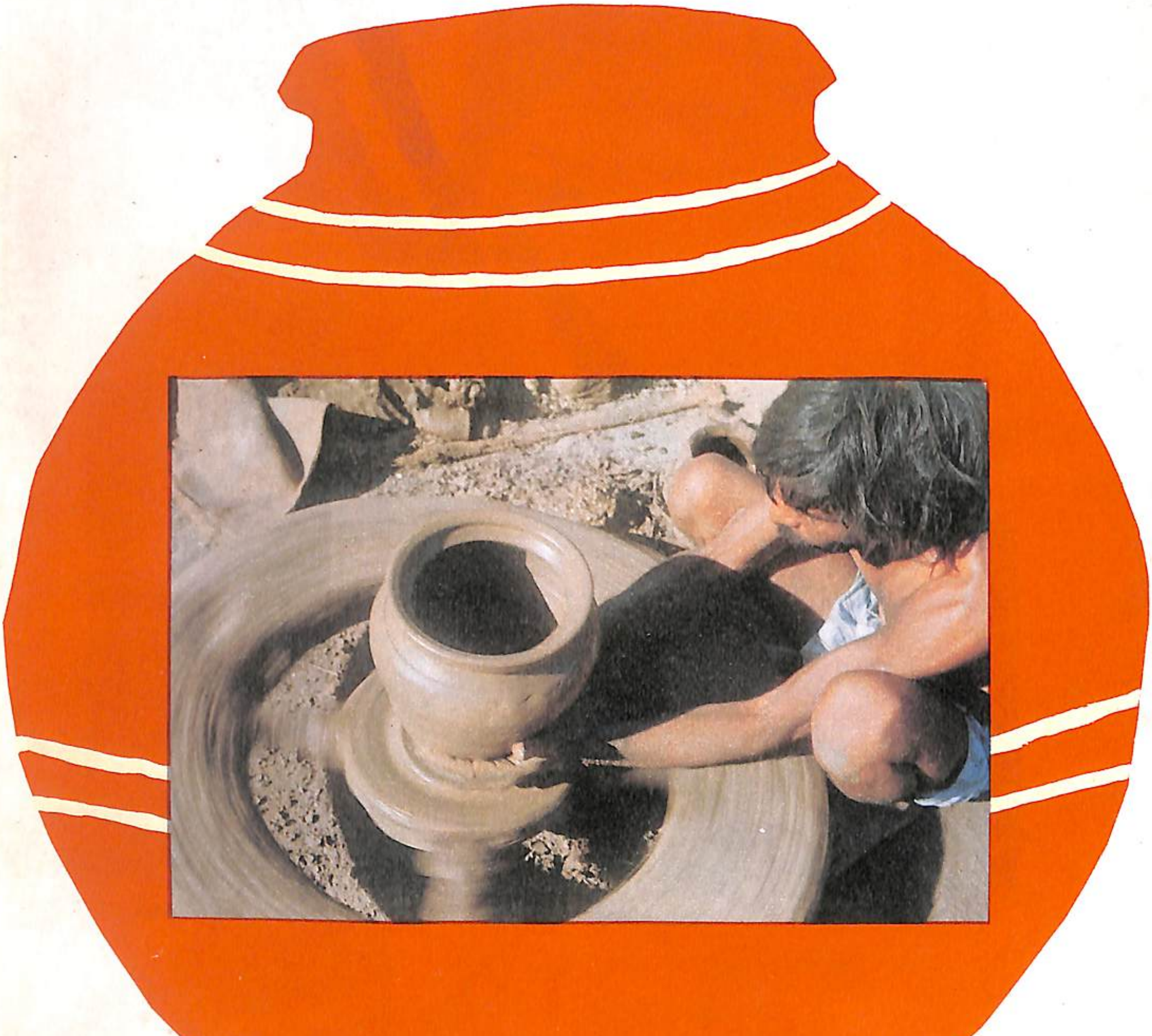

मिट्टी से मटका

रशीदा, छठवीं, झुंझनू, राजस्थान

कुलवेन्द्र सिंह पिछोड़े लोधी, तीसरी, पाण्डुतला, बालाघाट, म.प्र.

चकमक
मासिक बाल विज्ञान पत्रिका
वर्ष -13 अंक-10 अप्रैल, 1998
सम्पादन
विनोद रायना
राजेश उत्साही
कविता सुरेश
टुलटुल विश्वास
कला-सज्जा
जया विवेक
विज्ञान परामर्श
सुशील जोशी
वितरण
कमल सिंह, मनोज निगम, अशोक रोकड़े

चकमक का चंदा

एक प्रति	सात रुपए
छमाही	40.00 रुपए
वार्षिक	75.00 रुपए
दो साल	140.00 रुपए
तीन साल	200.00 रुपए
आजीवन	750.00 रुपए

साथ में आपके किसी मित्र या परिचित को एक साल की मुफ़्त सदस्यता।
आजीवन : 1000.00 रुपए
साथ में एकलव्य के सभी प्रकाशनों की एक-एक प्रति पर 50% छूट।
सभी में डाक ख़र्च हमारा
चंदा, मनीआर्डर/ड्राफ्ट/चेक से **एकलव्य** के नाम पर भेजें। भोपाल से बाहर के चेक में बैंक चार्ज 15.00 रुपए अतिरिक्त जोड़ें।

कवर का काग़ज़ : यूनिसेफ़ के सौजन्य से।

पत्र/चंदा/रचना भेजने का पता
एकलव्य
ई -1/25,
अरेरा कॉलोनी,
भोपाल - 462 016
(म. प्र.)
फोन : 563380

किरण मनमौजी, सात वर्ष, उज्जैन, म. प्र.

152 वें अंक में ...

विशेष

13 ❑ मिट्टी से मटका
20 ❑ चित्र : मिट्टी से मटका

कविताएँ

9 ❑ नींद
24 ❑ पूँछ

कहानी

29 ❑ नीली विपत्ति

हर बार की तरह

2 ❑ इस बार की बात
18 ❑ वर्ग पहेली - 82
23 ❑ खेल कागज़ का : कप
38 ❑ माथा पच्ची
मेरा पन्ना पृष्ठ 12, 19, 22, 37 एवं 40 पर

धारावाहिक

26 ❑ भूली बिसरी यादें : 6

और यह भी

5 ❑ वैज्ञानिक : कमला सोहनी
10 ❑ तुम भी बनाओ

आवरण : वेणु एंडले

एकलव्य एक स्वैच्छिक संस्था है जो शिक्षा, जनविज्ञान एवं अन्य क्षेत्रों में कार्यरत है। चकमक, एकलव्य द्वारा प्रकाशित अव्यावसायिक पत्रिका है। चकमक का उद्देश्य बच्चों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति, कल्पनाशीलता, कौशल और सोच को स्थानीय परिवेश में विकसित करना है।

इस बार की बात .....

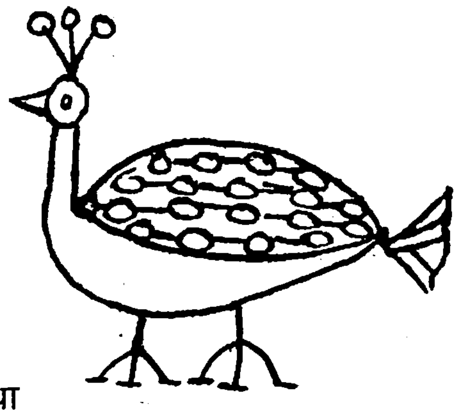

हर बार की तरह चकमक का एक और अंक तुम्हारे पास पहुँच गया। तुम्हारी पढ़ाई और परिक्षाओं के दिन पीछे रह गए और अगले साल की पढ़ाई अभी दूर है तो क्यों न कुछ नया किया जाए।

देश में, दुनिया में जो कुछ पिछले दिनों चल रहा था या अभी भी चल रहा है इस बारे में तुम क्या सोचते हो? जैसे पिछले दिनों हमारे देश में केन्द्र में सरकार बनाने के लिए जो उठापटक चल रही थी उससे तुम लोग भी अन्जान तो नहीं होगे, और फिर चुनाव हुए, और फिर एक सरकार बन ही गई।

हम जानना चाहते हैं कि तुम क्या सोचते हो ,क्या समझते हो इन सारी बातों के बारे में। लेकिन सिर्फ़ इतना ही नहीं बल्कि यह भी कि तुम अपनी क्या राय रखते हो इस विषय में। अगर तुम से पूछा जाए कि कैसे चलाया जाए देश को तो तुम क्या कहोगे?

अब तुम यह मत सोचने लगना कि हम क्या कह सकते हैं हम तो बच्चे हैं, हम तो अभी बहुत छोटे हैं। आज जो कुछ देश में हो रहा है उस का असर तो आगे आने वाले दिनों पर भी पड़ता है, पड़ेगा ही। आने वाले दिनों में तुम भी बड़े होगे। और फिर आजकल जो हो रहा है उसका असर तुम पर पड़ ही रहा है न। तो फिर इस पर क्यों न सोचा जाए?

तुम इनके कारणों की खोजबीन करोगे? अकेले-अकेले नहीं साथियों के साथ मिलकर और अपने बड़े-बुज़ुर्गों से बातचीत करके। अगर कुछ खोज सको तो हमें ज़रूर लिखना।

● चकमक

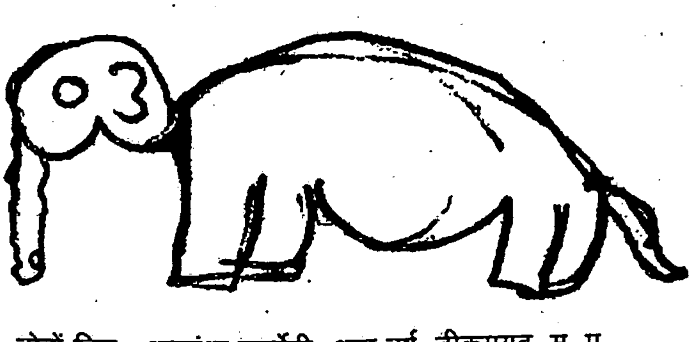

दोनों चित्र : आकांक्षा चतुर्वेदी, आठ वर्ष, टीकमगढ़, म. प्र.

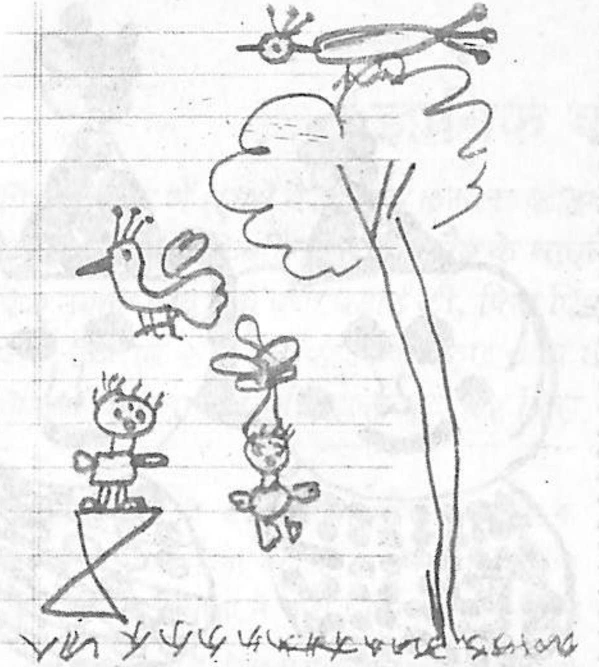

सतीश जोशी, सातवीं, चिंतामन, उज्जैन, म. प्र.

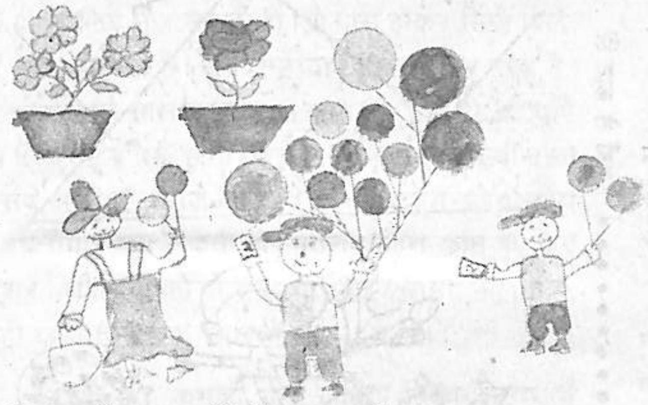

श्वेता पँवार, सातवीं, सेंधवा, खरगोन, म. प्र.

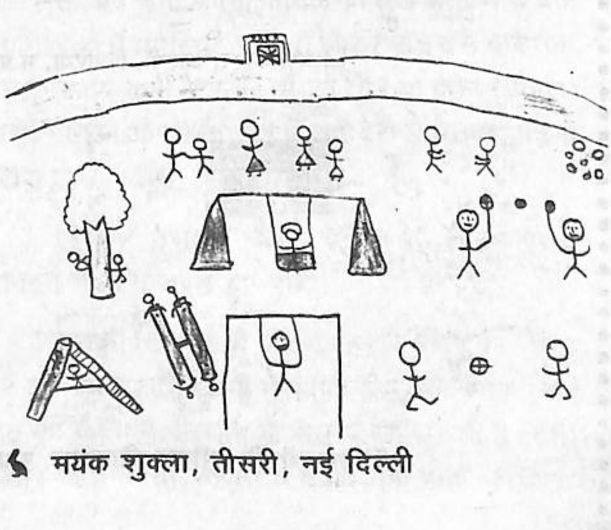

मयंक शुक्ला, तीसरी, नई दिल्ली

यहाँ से काट लें

चकमक

सदस्यता फॉर्म

मुझे/हमें निम्न पते पर

माह .... से चकमक

भेजना शुरू करें–

नाम ....

मोहल्ला ....

डाकघर ....

ज़िला ....

पिन [| | | | |]

सदस्यता शुल्क रु. ....

.... माह/वर्ष

के लिए मनीआर्डर/ड्राफ्ट/चेक से

भेज रहे हैं।

नाम एवं हस्ताक्षर

सदस्यता दरें

छह माह	:	40.00 रुपए
एक साल	:	75.00 रुपए
दो साल	:	140.00 रुपए
तीन साल	:	200.00 रुपए
आजीवन	:	750.00 रुपए *
आजीवन	:	1000.00 रुपए ०

* इस सदस्यता पर आपके किसी मित्र को साल भर चकमक का उपहार

० इस सदस्यता पर एकलव्य के सभी प्रकाशनों की एक प्रति पर 50% की छूट

सदस्यता शुल्क मनीऑर्डर/ड्राफ्ट/चेक से 'एकलव्य' के नाम में इस पते पर भेजें –

एकलव्य, ई–1/25, अरेरा कॉलोनी, भोपाल 462 016 (म. प्र.)

भोपाल से बाहर के चेक से शुल्क भेजते समय कृपया 15.00 रुपए बैंक चार्ज अतिरिक्त जोड़ें।

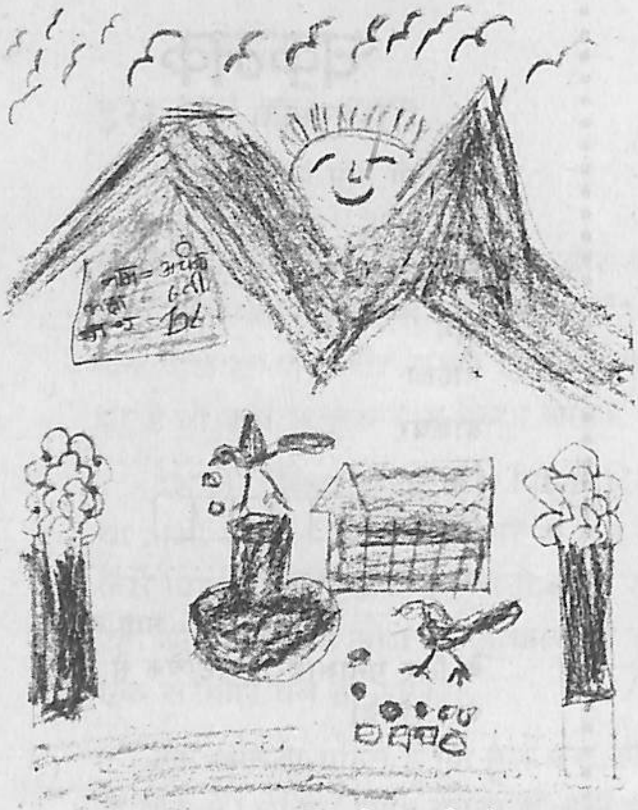

❑ अर्चना, छठवीं, भोपाल, म.प्र.

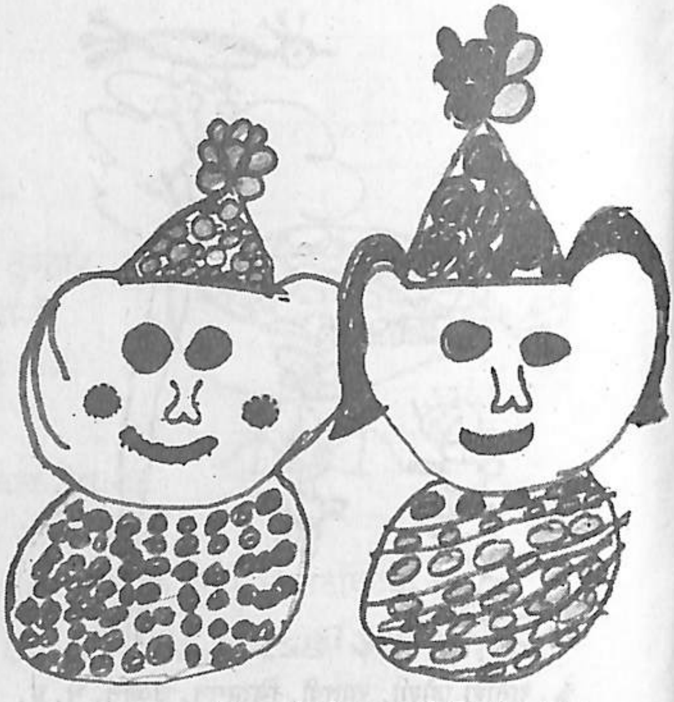

❑ मनु चौधरी, आठ वर्ष, बिजनौर, उ.प्र.

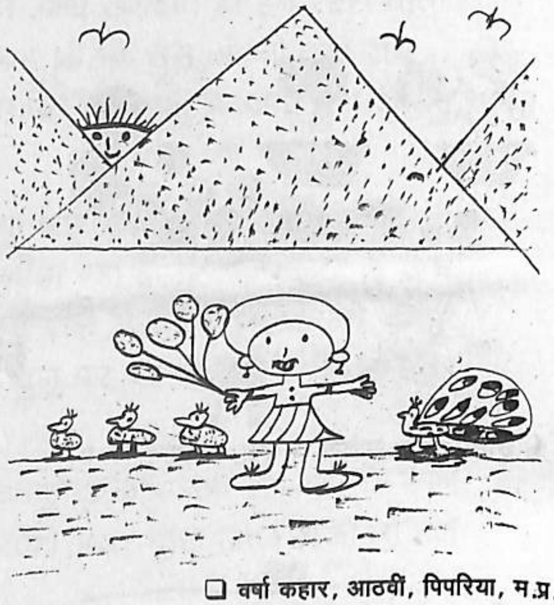

❑ वर्षा कहार, आठवीं, पिपरिया, म.प्र.

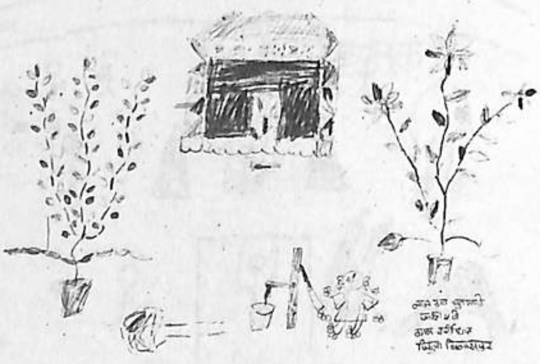

❑ उषा, पाँचवीं, दर्रीघाट, बिलासपुर, म.प्र.

यहाँ से काट लें

चकमक का उपहार

अगर आप चकमक का सदस्यता शुल्क भेज रहे हैं तो अपने किसी ऐसे परिचित/दोस्त/परिवारजन का पता यहाँ लिखें जिसे आप चकमक से परिचित कराना चाहते हों या चकमक का उपहार देना चाहते हों। हम उन्हें चकमक का एक अंक उपहार में भेजेंगे।

नाम ....

....

मोहल्ला ....

डाकघर ....

ज़िला ....

पिन ☐☐☐☐☐☐

....

....

वैज्ञानिक कमला सोहनी

पिछले अंक में तुमने वैज्ञानिक कमला सोहनी के बारे में पढ़ा था। अपनी मनमर्जी की पढ़ाई के लिए उन्होंने किसी तरह बंगलौर के भारतीय विज्ञान संस्थान में एडमीशन तो ले लिया। फिर उसके बाद वहाँ क्या पढ़ाई की, किन विषयों पर काम किया, यह भी तुम जानना चाहोगे। जिस किताब से हमने पहले का कुछ अंश छापा था उसी से कुछ और हिस्सा निकाला है। जिसमें कमला सोहनी द्वारा दूध पर किए गए शोध की जानकारी है।

''**एक्सक्यूज़** मी सर, लेकिन मुझे एक साल के प्रोबेशन पर प्रवेश दिया गया है, उसके क्या निश्चित परिणाम होंगे?'' कमला ने सारा धैर्य समेटते हुए पूछा।

''मतलब ऐसा है, देखो ये एक शोध संस्थान है। यहाँ दो साल शोध करने के बाद उस काम पर आधारित तुम्हारा शोध प्रबंध किसी विश्वविद्यालय को एम. एस सी. डिग्री के लिए भेज सकती हो। वो पास होकर डिग्री मिले, ये बाद की बात है। अब तुम्हें यहाँ प्रोबेशन पर रखा है। मतलब पहले साल का तुम्हारा काम एम. एस सी. की दृष्टि से विचारणीय नहीं होगा। लेकिन काम अगर संस्थान को पसंद आया तो अगले साल के शोध पर तुम अपना शोध प्रबंध तैयार कर सकती हो। मतलब जिस काम के लिए दूसरे विद्यार्थियों को दो साल या अधिक समय मिलता है, वही काम तुम्हे एक साल में करना पड़ेगा।''

''ठीक है'', कमला भारी लेकिन निश्चयी स्वर में बोली।

''तो अब सुनो अपना कार्यक्रम। रोज सुबह पाँच बजे प्रयोगशाला में उपस्थित रहने से लेकर रात दस बजे तक मन लगाकर काम करना। मैं जो दूँगा वो काम (सवाल) करने पड़ेंगे। और रोज़ रात में लायब्रेरी में बैठकर पढ़ना पड़ेगा।''

''लेकिन उसका खाना वगैरह?'' नारायणराव भागवत ने ज़रा डरते हुए पूछा।

''उसकी चिंता छोड़ो, मेरे दोपहर के खाने का डिब्बा मेरे घर से आता है। उसी में इसके लिए भी मँगवा दूँगा। रात का खाना ये संस्थान के मेस में खा सकती है। ऐसी बेकार बातों में उसका समय बर्बाद नहीं होना चाहिए।''

''ठीक है, मुझे आपकी सारी शर्तें मंजूर हैं। पर मेरी भी एक शर्त आप मानें ऐसी विनती है, '' कमला ने कहा।

''कौन सी शर्त?'' श्रीनिवासैया जी ने थोड़े आश्चर्य से पूछा।

''मुझे रोज़ शाम को 4 से 6, दो घंटे काम से छुट्टी दीजिए।''

''वो किस लिए?''

''वैसे देखा जाए तो यह मेरा निजी मामला है। यहाँ होने वाले शोध से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। पर आप पूछ ही रहे हैं तो बताती हूँ। इन दो घंटों में मैं टेनिस खेलूँगी।''

''टेनिस?'' श्रीनिवासैया को आश्चर्य हुआ। एक तो मराठी लड़की, सीधी-सादी दिखने वाली, खुद को पढ़ाकू कहने वाली और टेनिस खेलेगी?

''हाँ टेनिस। एक तो टेनिस मुझे दिल से पसंद है और रोज़ दो घंटे खुली हवा में खेलने से मेरा शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य अच्छा रहेगा। आपका दिया हुआ कठिन काम भी मैं अच्छे से पूरा कर पाऊँगी।''

''ठीक है तो फिर दी इजाजत।'' श्रीनिवासैया थोड़ी नाराज़गी, थोड़े कौतुहल और बहुत सारे आश्चर्य से बोले।

''थैंक्यू सर, आपने अपने मार्गदर्शन में मुझे काम करने का अवसर दिया, इस बात के लिए कभी आप को पछताना नहीं पड़ेगा, इतना ही आश्वासन देती हूँ। ''

इस तरह सारी व्यवस्था हो जाने के बाद श्री भागवत उसी रात बम्बई वापस चले गये। कमला को रहने के लिए कैम्पस में ही एक छोटा-सा घर दिया गया। रात में साथ

रहने के लिए एक बाई थी। श्रीमती रमन वहाँ की उसकी अभिभावक (गार्जियन) बनीं। दोपहर का खाना वो लैब में अपने सर के साथ तथा रात का खाना कॉलेज मैस में खाती। ऐसी सब ठीक-ठाक व्यवस्था हो गई।

पहले दिन कमला सुबह चार बजे उठकर, तैयार होकर, ठीक पाँच बजे जीव रसायन प्रयोगशाला में पहुँची। वो लैब की सीढ़ियाँ चढ़ ही रही थी कि उसके गुरु श्रीनिवासैया ऊपर लैब के दरवाज़े पर हाथ में घड़ी लिए खड़े थे।

''देर हो गई तुम्हें आने में,'' वो गंभीरता से बोले। ''पाँच बजे से काम करने का मतलब उसके पहले लैब में हाज़िर होना चाहिए। अच्छा वैज्ञानिक होना है तो सबसे पहले सब कुछ बिल्कुल नियमित, व्यवस्थित और समय पर करने की आदत डालनी चाहिए।''

''सॉरी सर, मेरे देर से, मतलब ठीक पाँच बजे आने का आज आख़िरी दिन। आगे से ऐसी गलती कभी नहीं होगी।'' और सचमुच उसके बाद हमेशा ही पाँच बजने के पहले वो लैब में हाज़िर रहती थी। उसमें एक दिन भी व्यवधान नहीं आया।

दोनो लैब में गए। कमला सारे उपकरणों को आतुर नज़रों से देख रही थी। यह बात शायद उनके ध्यान में आई। उन्होंने कहा, '' शास्त्रीय शोध कोई बच्चों का खेल नहीं है। बहुत मेहनत करनी पड़ती है। कुछ साधारण शास्त्रीय कौशल हैं जो सीखकर आत्मसात करने पड़ते हैं। पृथक्करण की अलग-अलग पद्धतियाँ मालूम करनी पड़ेंगी। डायलेसिस जीव रसायन के क्षेत्र में बहुत महत्व रखती है। वो जानना पड़ेगा। ग्लास ब्लोइंग वग़ैरह कुछ खुद करने के काम हैं, वो आना बहुत उपयुक्त होगा। ये सब सीखने के बाद शोध करने पर विचार किया जा सकता है।''

कमल ने खुशी से हाँ कहा। कोई भी नया शास्त्र सीखने के लिए वह हमेशा खुशी से तैयार होती थी। सर के बताए गए नए काम सीखने के लिए लगने वाले सब सामान की लिस्ट उसने उत्साह से बनाई। और संस्थान के स्टोर में भेजने से पहले, सर के हस्ताक्षर के लिए उनके सामने रखी। लेकिन तुरंत ही उसका उत्साह जाता रहा। उन्होंने कहा, ''अभी इसकी कोई ज़रूरत नहीं है। अपने पास यह सब उपकरण हैं।''

''हैं? कहाँ?''

सर ने बड़े आराम से आलमारी का दरवाज़ा खोला और ग्लास ट्युबिंग का एक बड़ा-सा गठ्ठर निकालकर अपने विद्यार्थी के सामने रख दिया। वो कुछ समझ नहीं सकी और उसे देखती ही रह गई।

अंततः हिम्मत करके उसने कहा, ''सर यह उपकरण तो नहीं है। यह तो साधारण ग्लास ट्युब्स (काँच की नलियाँ) हैं।''

''बिल्कुल ठीक। लेकिन छोटी-छोटी चीज़ों के लिए जो अटके वो वैज्ञानिक कैसा? इन नलियों से तुम्हें जो चाहिए वो उपकरण तुम बनाओगी। अपने स्टोरकीपर अच्छे ग्लास ब्लोअर हैं। वो तुम्हें ग्लास ब्लोईंग सिखाएँगे''

बस कमला की ग्लास ब्लोईंग (काँच को बहुत अधिक तापमान पर गर्म करके, नर्म हो जाने पर उसमें फूँककर हवा भरकर आकार देना) की कक्षाएँ आरंभ हो गईं। सबसे पहले उसने एक पिपेट बनाई, यानी काँच की

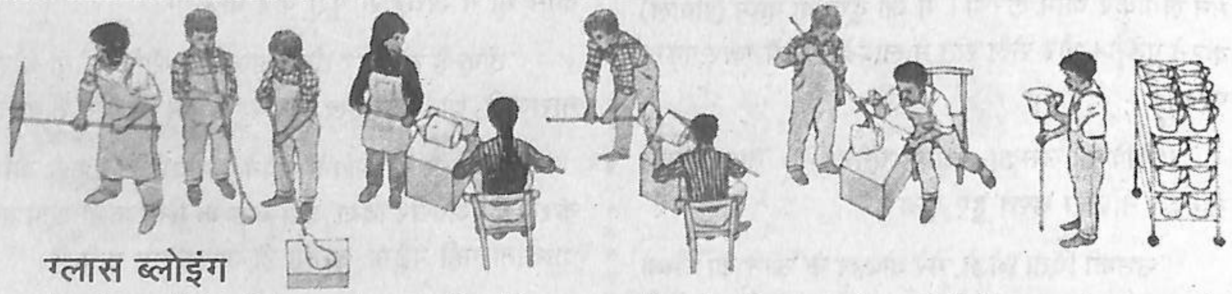

ग्लास ब्लोइंग

सबसे पहले एक पोली नली के एक छोर पर गर्म-नर्म पिघला हुआ काँच इकट्ठा किया जाता है। नली में फूँककर उसे एक बुलबुले की तरह फुलाकर ठण्डा किया जाता है। फिर उसे दोबारा गर्म करके एक लोहे के पटिए के उपर रखकर कुछ औज़ारों की मदद से आकार दिया जाता है। चित्र : द डॉरलिंग किंडरस्ले साइंस एन्सायक्लोपीडिया से साभार।

एक पोली नली जो बीच में फूली होती है और जिसका एक सिरा थोड़ा सँकरा होता है। इसे पानी या किसी द्रव पदार्थ में डुबाकर दूसरे खुले हुए सिरे को अपने मुँह में डालकर हवा को अन्दर की तरफ खींचते हैं। इस तरह पानी या कोई द्रव पदार्थ नली में भरा जा सकता है। उसने पिपेट बनाकर श्रीनिवासैया को दिखाई। उन्होंने कमला से पिपेट केलीब्रेट करने (द्रव का आयतन मापने के निशान लगाना) को कहा और केलिब्रेशन करने का तरीका भी सिखाया।

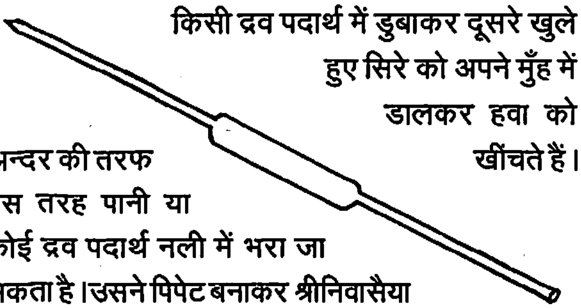

अब दूसरा पाठ डायलेसिस के लिए लगने वाली झिल्ली बनाने का था। जीव रसायन शास्त्र में डायलेसिस का ज़िक्र बार-बार आता है। डायलेसिस अर्थात पानी की सहायता से परासरण की क्रिया के द्वारा पृथक्करण। इसके लिए विशिष्ट प्रकार की झिल्ली (मेम्ब्रेन्स) लगती हैं। ये बाज़ार में भी मिलती हैं। लेकिन श्रीनिवासैया ने कमल को नाइट्रो-सेल्यूलोज़ (किसी भी तरह के जैविक पदार्थों से निकला नाइट्रोजनयुक्त रेशेदार पदार्थ) में मेम्ब्रेन बनाना सिखाया। अलग-अलग आकार की छोटी बड़ी मेब्रेन्स बनाना वो सीख गई।

मैसूर का दशहरा बहुत बड़ा व देखने लायक होता है। विभिन्न प्रकार की प्रदर्शनियाँ भी लगती हैं। यहाँ एक प्रदर्शनी में कमल के बनाए मेम्ब्रेन्स भी प्रदर्शित हुए और उसे खूब सराहना मिली। गुरू-शिष्य दोनों को सन्तुष्टि हुई। लेकिन गुरूजी वहीं रुके नहीं। उन्होंने उसे मेम्ब्रेन्स के सूक्ष्म छिद्रों की साच्छिद्रता (porosity) निकालना भी सिखाया।

ये सारा काम, ये सारा अभ्यास रसायनशास्त्र में शोध की दृष्टि से प्राथमिक पढ़ाई ही कही जाती है। लेकिन इस तरह से नींव बहुत मज़बूत होने से कमला की आगे की पढ़ाई में बहुत फ़ायदा हुआ। इस सारे काम में 3-4 महीने कैसे निकल गए पता ही नहीं चला।

और फिर एक दिन, "मिस भागवत अब आप शोध कार्य शुरू करेंगी क्या?" श्रीनिवासैया ने पूछा।

कमल को अपने कानों पर विश्वास ही नहीं हुआ। वो बहुत खुश हुई, "ऐसा हो सकता है क्या? सर।"

"हाँ बिलकुल, मुझे लगता है आपकी प्राथमिक तैयारी हो गई। तो सबसे पहले आप प्रोटीनों की प्राब्लम लें। विभिन्न प्रकार के दूध और साबुत अनाज के प्रोटीन और नॉन-प्रोटीन अलग-अलग करें।"

नाइट्रोजन पृथ्वी पर और पृथ्वी के सारे वातावरण में मौजूद है। सभी खाद्य पदार्थों में भी होता है। कभी इसका स्वरूप प्रोटीनयुक्त होता है कभी प्रोटीनरहित अर्थात नॉन-प्रोटीन होता है। यह काम कमला को बहुत ही आसान लगा। इसके आगे का कदम यानी प्रोटीनों के समूह में से विभिन्न प्रकार के प्रोटीनों को अलग करना। उसके बाद हर प्रोटीन का पृथक्करण करके यह पता लगाना कि कौन-सा प्रोटीन किस-किस अमीनोअम्ल से मिलकर बना है। इस तरह शोध के पहले चरण में ही कमला ने प्रोटीन का तीन स्तरों पर विभाजन किया। ये सब करते हुए काम करने के नए-नए तरीके सीखने को मिले। नए-नए उपकरण इस्तेमाल करने को मिले। कमला काम में एकदम डूब गई।

दूध पर शोध

प्रोटीन के बारे में पहला शोध उसने दूध पर किया। स्त्री, गाय, भैंस, बकरी और गधी के दूध का पृथक्करण भी उसने किया। उसमें कुछ सामान्य तो कुछ मज़ेदार निष्कर्ष निकले। सभी प्रकार के दूध में हज़म होने की दृष्टि से सबसे पहले माँ यानी स्त्री का दूध आता है। दूसरे नम्बर पर गाय का नहीं गधी का दूध है। अगर किसी बच्चे को माँ का दूध नहीं मिल पा रहा हो तो उसे गधी का दूध दिया

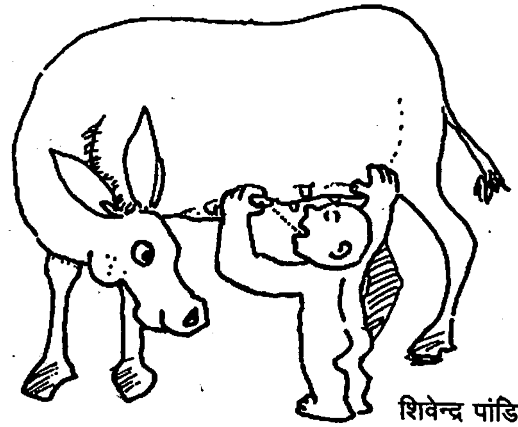

शिवेन्द्र पांडिया

जा सकता है।(वो गधे का बच्चा नहीं कहलाएगा!) तीसरे नम्बर पर गाय का दूध, उसके बाद बकरी और फिर सबसे आख़िर में भैंस का दूध आता है। अर्थात हज़म होने की दृष्टि से भैंस का दूध सबसे ज़्यादा भारी पड़ता है।

सभी प्रकार के दूध में से नॉन-प्रोटीन भाग अलग किए तो एक मज़ेदार बात पता चली। गधी के दूध का नॉन-प्रोटीन भाग अगर भैंस के दूध में मिला दिया जाए तो भैंस का दूध भी आसानी से हज़म हो सकता है। इसका एक कारण है कि दूध के प्रोटीनों में केसिन नाम का एक मुख्य प्रोटीन होता है। अलग-अलग प्राणियों के दूध में केसिन का आकार छोटा-बड़ा होता है। केसिन का आकार बड़ा होगा तो दूध हज़म होने में थोड़ी मुश्किल होगी यानी दूध भारी होगा। भैंस के दूध में गधी के दूध का नॉन-प्रोटीन मिलाने से उसमें केसिन का आकार छोटा हो गया। इसलिए वो जल्दी हज़म हो पाया।

इतना सब करते ही कमल को आगे का रास्ता दिखा। माँ के दूध की तुलना में भैंस के दूध में चिकनाई का प्रतिशत अधिक होता है, इसलिए वो छोटे बच्चे को हज़म नहीं होता। अब अगर भैंस के दूध की चिकनाई को कम करके माँ के दूध के बराबर लाया जाए, और गधी के दूध का नॉन-प्रोटीन मिलाकर उसका केसिन तत्व भी ज़रुरत के मुताबिक कम किया जाए तो? तो भैंस का दूध भी मनुष्य के बच्चे को हज़म हो सकता है।

देश में भैंस के दूध और गधी के दूध की तुलनात्मक उपलब्धता देखी जाए (यानी जितना भैंस का दूध मिलता है, उतना गधी का दूध नहीं मिलता) तो इस प्रयोग का महत्व समझ में आएगा। कमला सिर्फ सोचकर ही रुक नहीं गई। बल्कि उसने वो प्रयोग सफलता पूर्वक किया और उसे नाम दिया **''भैंस के दूध का मानवीकरण''** (humanisation of buffalo milk)। प्रयोग सफल हुआ लेकिन उसे ज्यादा प्रसिद्धी नहीं मिल पाई मन की बात मन में ही रह गई।

''विज्ञान विशारदा'' नामक मूल मराठी पुस्तक का एक अंश, लेखिका श्रीमती वसुमति धुरू की अनुमति से साभार प्रकाशित। अनुवाद – जया। ❑

गर्मी का एक दिन

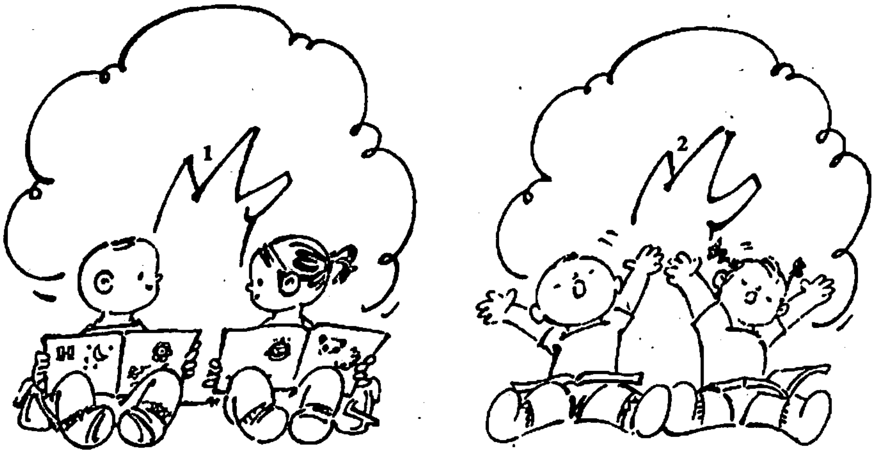

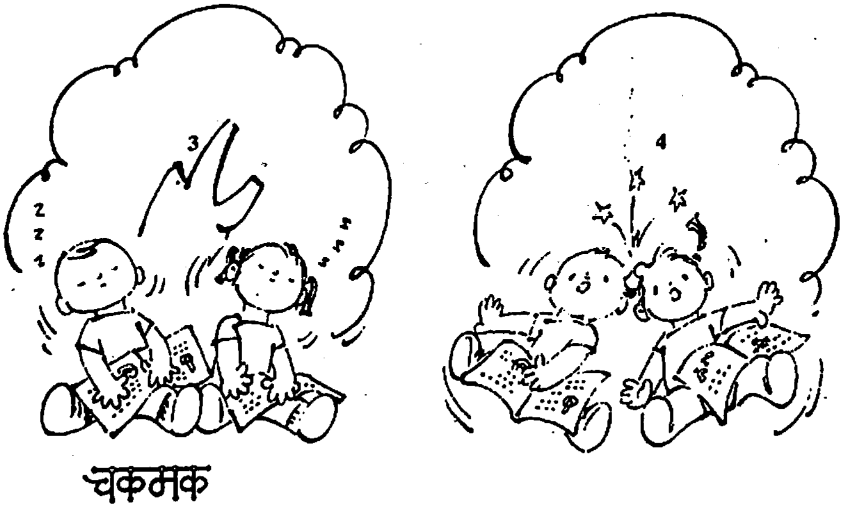

डॉलफिन प्रकाशन की पुस्तक 'बालकार्टून' से साभार

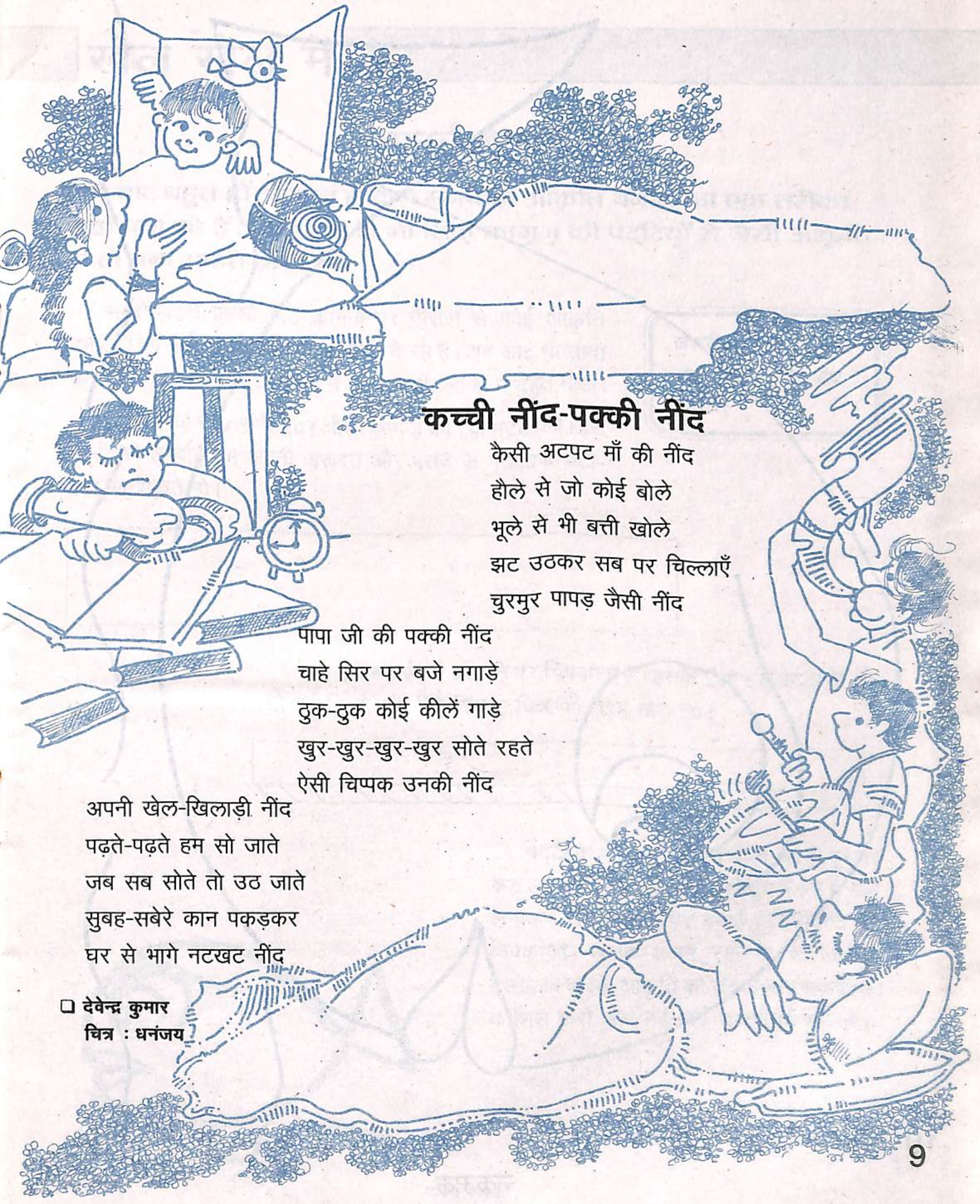

कच्ची नींद-पक्की नींद

कैसी अटपट माँ की नींद
हौले से जो कोई बोले
भूले से भी बत्ती खोले
झट उठकर सब पर चिल्लाएँ
चुरमुर पापड़ जैसी नींद

पापा जी की पक्की नींद
चाहे सिर पर बजे नगाड़े
ठुक-ठुक कोई कीलें गाड़े
खुर-खुर-खुर-खुर सोते रहते
ऐसी चिप्पक उनकी नींद

अपनी खेल-खिलाड़ी नींद
पढ़ते-पढ़ते हम सो जाते
जब सब सोते तो उठ जाते
सुबह-सबेरे कान पकड़कर
घर से भागे नटखट नींद

❑ **देवेन्द्र कुमार**
चित्र : धनंजय

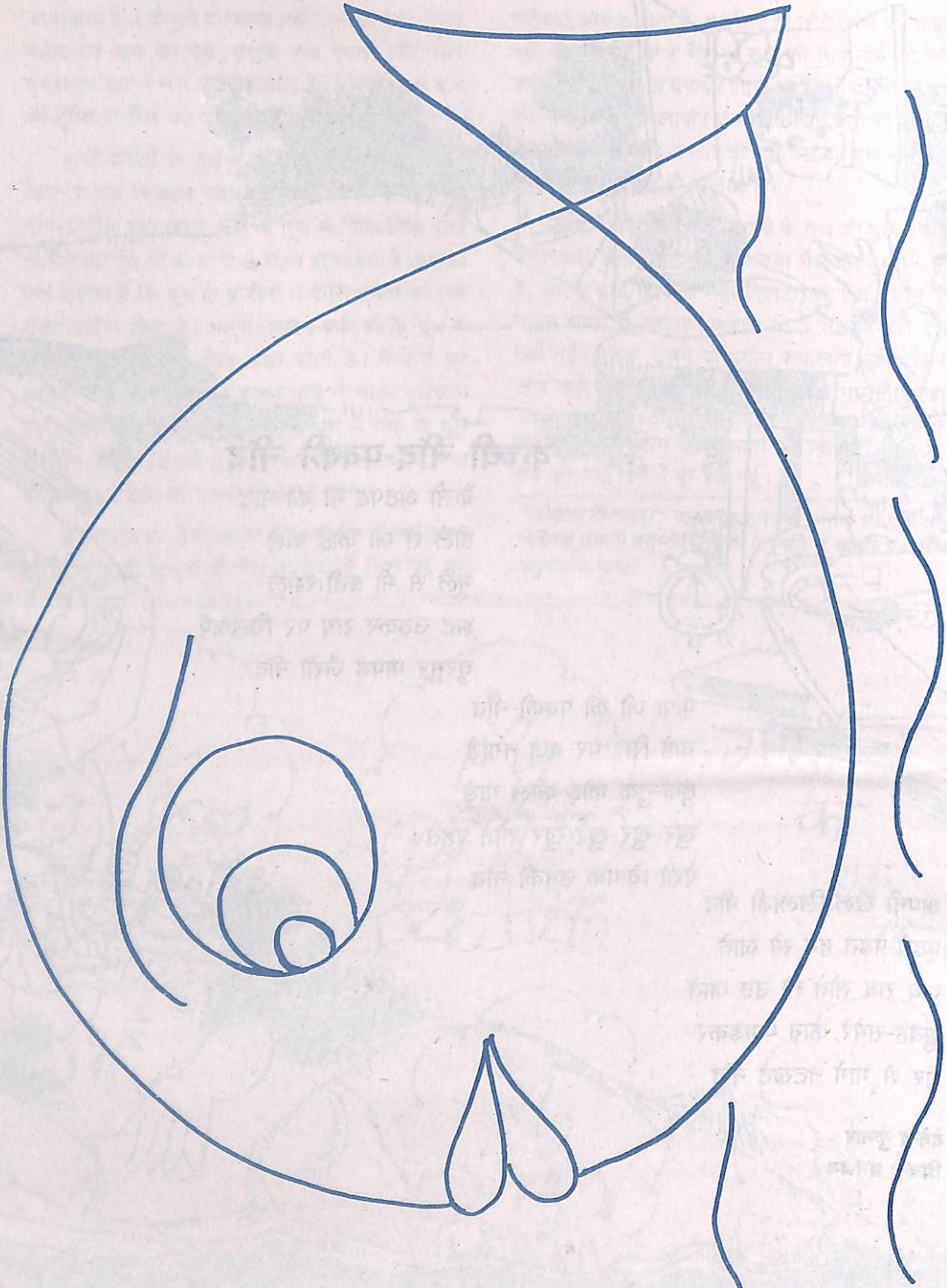

मछली बनाओ

इस बार बहुत ही आसान लेकिन मनचाही आकृति बनाने का एक तरीका यहाँ बता रहे हैं। बिना रंग के भी सिर्फ़ काग़ज़ की पट्टियों से जैसी आकृति चाहो बना सकते हो।

सबसे पहले किसी मोटे काग़ज़ पर पेंसिल से कोई आकृति बनालो। हम यहाँ एक मछली की आकृति दे रहे हैं। अब कोई भी सादा या रंगीन काग़ज ले लो। काग़ज़ न तो बहुत पतला हो न बहुत मोटा।

जरूरी सामान: रंगीन या सादा काग़ज़ और गोंद, पेंसिल।

इस काग़ज़ से 2 सेंटीमीटर चौड़ी काग़ज़ की एक पट्टी लो। इस पट्टी की लम्बाई तुम अपनी ज़रूरत और पसंद के मुताबिक घटा-बढ़ा भी सकते हो।

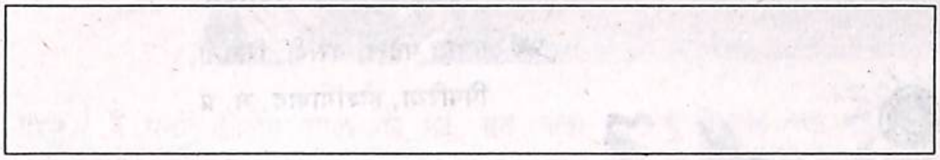

अब इसे बनाई हुई आकृति पर चिपकाना है। इसके लिए इस पट्टी के एक चौथाई हिस्से को नीचे दिखाए चित्र की तरह मोड़ लो।

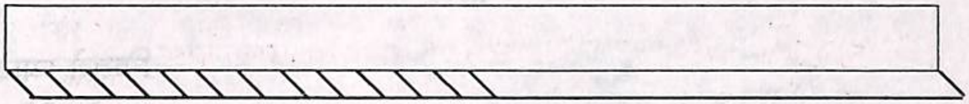

पट्टी के मुड़े हुए हिस्से में थोड़ी-थोड़ी दूर पर कट लगा लो। फिर इस कट लगे हुए हिस्से में गोंद लगाकर मोटे काग़ज़ पर बनाई हुई आकृति पर चिपकाओ। अलग-अलग रंगों के काग़ज़ का इस्तेमाल करके आकृति को सुन्दर बना सकते हो। कोशिश करो और नई-नई आकृतियाँ बनाओ।

गर्मी का मौसम

गर्म गर्म हवा चलती है
गर्मी का एहसास दिलाती

करती कूँ कूँ कोयल रानी
मतवाली आवाज़ सुनाती
लाल लाल पकी है जामुन
पके हुए हैं आम पपीता

गर्म गर्म हवा चलती है
गर्मी का एहसास दिलाती

लगता है मौसम मतवाला
छुट्टी के भी दिन होते हैं
कट जाते हैं मौज मज़े से

गर्म गर्म हवा चलती है
गर्मी का एहसास दिलाती

इधर-उधर घूमेंगे रोज़
न होती मम्मी की डाँट
न होता पापा का काम

गर्म गर्म हवा चलती है
गर्मी का एहसास दिलाती

आनन्द पटेल, दसवीं, सिवनी,
पिपरिया, होशंगाबाद, म. प्र.

अरविन्द गौड़, दूसरी, लोधर मन्धना, कानपुर, उ.प्र.

आम

कितने प्यारे लगते आम
खट्टे मीठे होते आम
कितने किस्म के इनके नाम
कोई कहता कलमी आम
कोई कहता लंगड़ा आम
सब फलों का राजा आम
आता कितना ज़्यादा काम
चार-पाँच रुपए किलो आम
कितने सस्ते इनके दाम
जिसको खाता हर इन्सान
कितने प्यारे लगते आम

नसरीन, नौवीं, शहडोल, म. प्र.

मिट्टी से मटका

❑ वेणु एंडले

"जब मैं पन्द्रह-सोलह साल का था, तब चाक चलाना सीखना शुरू किया। स्कूल से पढ़ के लौटे और फालतू रहे तो चाक चला लिया। किसी ने सिखाया थोड़े ही। वो तो बस देख-देखकर ही सीख गए। घर में पिता और बाबा मटके बनाते थे। बस उन्हें बनाते देखता, और फिर कभी घूमते-फिरते बैठकर थोड़ा चाक चला लिया। फिर धीरे-धीरे कुछ-कुछ चीज़ें भी बनाने लगे। कोई इतना बता देता था कि यहाँ से दबाना, इस तरफ उँगली लगाओ, बस बाक़ी तो करते-करते सीख गए।"

शाहपुर के धुन्नीलाल प्रजापति समझा रहे थे कि उन्होंने मटका बनाना कैसे सीखा। सुनकर लगा, ये तो बड़ा आसान है - बस बनाते रहो। और फिर सीख जाओ। पर जब उन्होंने यह भी बताया कि इसमें उन्हें दो-ढाई साल लग गए तो लगा - बाप रे! ये तो सच में मुश्किल रहा होगा।

"सबसे पहले दिये बनाना सीखते हैं। छोटे-छोटे होते हैं - मिट्टी को बस थोड़ा-सा दबाना और किनारों से थोड़ा-सा उठाकर खींचना होता है।" धुन्नीलाल बता रहे थे, "शुरू में हाथ ठहरता नहीं था, तो कोई थोड़ा हाथ पकड़कर सिखा देता था। पर दिये के किनारे थोड़े टेढ़े भी हो जाएँ तो दिक्कत नहीं होती। जब दिये बनाते-बनाते, चाक चलाने, एक से दिये बनाने और उन्हें उतारने की आदत हो जाती है, तब कहीं जाकर मटका बनाना सीखना शुरू करते हैं।"

जब मैं धुन्नीलाल से बात कर रही थी, तो उनकी पत्नी और माँ आँगन में मिट्टी गूँथ रही थीं। कुछ नई मिट्टी भी आई थी। उसमें से पत्थर बीनकर अलग कर रहीं थीं और मिट्टी को फैला रही थीं, ताकि वो अच्छी तरह से सूख जाए।

काम ख़त्म हुआ तो धुन्नीलाल की पत्नी गौराबाई भी हमारे पास बैठ गईं। धुन्नीलाल मटका पीटने में लगे थे। मैं गौराबाई से बात करने लगी। मैंने उन्हें मटका बनाते नहीं देखा था। बल्कि हमारे मोहल्ले, पतौआपुरा में किसी भी कुम्हार के घर किसी बाईचारी (औरत) को चाक चलाते नहीं देखा था। गौराबाई ने बताया, "लड़कियों को चाक चलाना सिखाते ही नहीं!"

"ऐसा क्यों!" मैंने आश्चर्य से पूछा।

"चाक चलाने में बहुत ज़ोर लगता है।" जवाब धुन्नीलाल ने दिया। वे समझाने लगे, "और फिर लड़कियाँ भी चाक चलाएँ तो बाकी काम कौन करेगा। मिट्टी बीनना, भिगोना, सानना, मटके रँगना बहुत सारे काम हैं।"

मटकों के अलावा भी कई चीज़ें बनाते हैं यहाँ के कुम्हार जैसे कवेलू, तवा, तन्दूर जो चाक पर नहीं बनते। ये सब महिलाएँ बनाती हैं। मैंने उन्हें ये बनाते हुए देखा है, मुझे लगा इसमें भी कोई कम मेहनत नहीं लगती। समय भी बहुत लगता है। हाथ की स्थिरता भी उतनी ही ज़रूरी है और कौशल का काम तो है ही।

मेरे मन में सवाल था कि सचमुच में क्या कारण है? क्या चाक चलाने में महिलाओं को शारीरिक रूप से कोई तकलीफ होती है? उनकी सेहत पर असर पड़ता है? या जैसा कि धुन्नीलाल का विचार था कि जो पहनावा है, वो आड़े आता है? पर फिर घरों में चक्की चलाने में, धान कूटने वाली ढेंकी चलाने में भी ये सब बातें लागू होती हैं। और चक्की चलाते तो मैंने किसी पुरुष को नहीं देखा।

और सोचा तो लगा कि लुहारी का काम, घर बनाने का काम, देखा जाए तो इनमें भी जो असली कारीगरी का काम होता है वह पुरुष ही करते हैं। चाहे लोहा पीटना, उसे आकार देना या फिर मिस्त्री का (जिनमें हुनर का प्रदर्शन होता है और श्रेय भी मिलता है) ऐसे सब काम पुरूषों ने अपने कब्ज़े में कर रखे हैं। और धोंकनी चलाना, मकान बनाने में मिट्टी-ईंट ढोने का काम महिलाओं के पल्ले पड़ता है। कुम्हारों में भी ऐसा ही बँटवारा नज़र आता है। कुछ और उदाहरण सोच के देखो, क्या यह सही है?

मैं अपने साथियों से बात कर रही थी। एक ने कहा, 'लड़कियाँ तो दूसरे घर चली जाती हैं, शायद इसलिए उन्हें प्रमुख काम नहीं सिखाते। पर बहुएँ भी तो घर में आती हैं।' और जैसा धुन्नीलाल ने बताया कुम्हारों में शादियाँ अपने ही समाज में होती हैं। फिर तो लड़कियों के काम करने की सम्भावना बनी रहती है। फिर समाज में इस तरह के बँटवारे के क्या कारण होंगे? वैसे धुन्नीलाल ने अपने ही समाज की एक ऐसी महिला का ज़िक्र भी किया जो सारणी में खुद ही मटके बनाती है। और इतना ही नहीं उसने अपने पति को भी यह काम सिखाया है।

खैर, हर धंधे के अपने नियम तो होते ही हैं, तो उसी तरह से कुम्हारों का एक यह है। मैंने पूछा, "लड़कियों को चाक चलाना नहीं सिखाते हैं तो क्या मुझे भी नहीं सिखाएँगे?"

धुन्नीलाल ने तो कहा, "सिखा देंगे। आपका रोज़ का काम थोड़े ही है।"

पर गौराबाई की एक शर्त थी, बोलीं, "पहले, मिट्टी तैयार करना, सानना सीखो। उसमें असली मेहनत लगती है। फिर चाक घुमाना सिखाएँगे।"

मेरी एक दोस्त केसला (शाहपुर से 30-35 किलोमीटर उत्तर की ओर का एक कस्बा) के पास के एक गाँव में हाट के दिन गई। वहाँ मटके, तवे वग़ैरह की एक दुकान भी थी। एक ग्राहक दुकानदार से मोल भाव कर रहा था, 'इतना महँगा दे रहे हो मटका! केसला में तो सस्ता मिल जाता है। 'मटके वाला बोला, 'होगा केसला में सस्ता! ये कोई मामूली मटका नहीं है। ये शाहपुर का मटका है।'

मेरी दोस्त ने मुझसे पूछा था, 'ऐसा क्या ख़ास है शाहपुर के मटकों में?' सचमुच ऐसा क्या है कि भोपाल से नागपुर तक सभी जगह शाहपुर के मटकों की धूम है? ट्रक भर-भर के जाते हैं। मैंने भी धुन्नीलाल से यही सवाल पूछा।

धुन्नीलाल ने बताया, "शाहपुर में बिलकुल 'पेवर' मिट्टी का इस्तेमाल होता है। यहाँ की मिट्टी ऐसी है कि उसमें मटके बनाने के लिए कुछ और मिलाना ही नहीं पड़ता है। यहाँ की मिट्टी न बहुत सूखी है, न बहुत चिकनी।"

शाहपुर के पास पाढर, बैतूल, चिचौली में भी ऐसी मिट्टी मिल जाती है। जहाँ ज़्यादा चिकनी मिट्टी मिलती है, जैसे मोखला में, वहाँ उसमें धूल मिलाई जाती है। आमला, मोहरा, दामजीपुरा में कुम्हार मिट्टी में घोड़े-गधे की लीद मिलाते हैं। अच्छे मटके की ख़ासियत इस बात में होती है कि उसमें पानी कितना ठंडा रहता है। तो शाहपुर की मिट्टी में यह खूबी है।

मिट्टी पोरस होने के कारण मटके में से हवा आराम-से इधर-उधर जाती है, जिससे पानी लगातार ठंडा बना रहता है।

दूसरी तरफ शाहपुर की मिट्टी इतनी नरम नहीं है कि इसे चाक पर मन माफिक मोड़ा जा सके। यानि पतली, लम्बी, घुमावदार चीज़ें बनाने के लिए यह अच्छी नहीं है। एक-दो बार धुन्नीलाल ने सुराही बनाने की कोशिश की थी, पर पकाते समय वो गरदन से चटक जाती थी। सुराही बनाने के लिए ऐसी मिट्टी में कपास या भूसा मिलाना पड़ता है। चाहते तो शायद शाहपुर के कुम्हार भी सुराही बनाते, पर उनकी परम्परा में इसे अपनाया नहीं गया।

तवा, कवेलू, तंदूर का ज़िक्र मैंने पहले भी किया था। इसके अलावा यहाँ के कुम्हार कसेड़ी (बड़ा मटका), गंज (खाना पकाने के लिए), कलश या डुबला (छोटा मटका, हंडिया), ढक्कन, गुल्लक और खिलौने भी बनाते हैं। इनमें से कुछ चीज़ें तो चाक पर बनती हैं - जैसे मटके, हंडिया, गंज, गुल्लक और कवेलू। बाकी सभी चीज़ें बाईयाँ हाथ से

बनाती हैं। कवेलू चाक पर भी बनते हैं और साँचे से भी। फिर अलग-अलग त्यौहारों पर खिलौने या अन्य चीज़ें भी बनती हैं - जैसे पोला अमावस्या पर बैल, दिवाली पर ग्वालिन, लक्ष्मी की मूर्ति।

ये सब चीज़ें उनकी परम्परा में हैं तो बनाते हैं, और बिकती भी हैं। पर कोई नई चीज़ बड़े पैमाने पर बनाने में उनकी कोई ख़ास रुचि नहीं दिखती। मुझे गुजरात के एक गाँव से एक दिया मिला था। यह दिया - देखने में गुल्लक जैसा है ऊपर से बन्द और पेन्दे में एक छेद। दिये को उल्टाकर इस छेद से तेल भरते हैं। दिये को सीधा करो तो तेल अन्दर भरा रह जाता है, बाहर नहीं निकलता। फिर किनारे के छेद में बत्ती डालकर उसे जलाते हैं। मैं ऐसा एक कच्चा दिया साथ लाई थी। मैंने वह पकाने के लिए धुन्नीलाल को दिया। उनके लिए यह नई चीज़ थी। उन्होंने अपने लिए वैसा ही छोटा-सा दिया बनाकर भी देखा। पर बड़े पैमाने पर बनाने के लिए तैयार नहीं हुए। उनका कहना था कि इस इलाके में यह बिकेगा नहीं। इसे बनाने में मेहनत काफ़ी लगती है। इतनी मेहनत करके भी वह बिके नहीं तो क्या फ़ायदा?

मैंने सोचा कोई चीज़ बने ही नहीं, तो लोगों को दिखेगी कैसे और दिखेगी नहीं, तो वे ख़रीदने का कैसे सोचेंगे। पर यह बात भी है कि यहाँ बड़ा बाज़ार तो मटकों का ही है। नई चीज़ के लिए बाज़ार ढूँढना भी पड़ेगा और शायद बनाना भी पड़ेगा।

ऐसा क्यों नहीं करते या ऐसा क्यों नहीं हो सकता, मेरे मन में सवाल था। असल में जो चीज़ें परम्परा में, रोज़मर्रा के जीवन मे रच-बस गई हैं, उनसे निकलना या इधर-उधर होना शायद बहुत आसान नहीं होता।

छोटे-छोटे धंधों में उत्पादन (यानी चीज़ों का बनना) और बिक्री का संबंध देखो तो बात समझ में आती है। जैसे धुन्नीलाल का परिवार मटके बनाकर जो कमाता है, उससे घर के ख़र्चे और मटके बनाने का ख़र्च ही निकल पाता है। अब इसमें नई चीज़ बनाकर उसे बाज़ार में बेचने का जोखिम उठाने की जगह नहीं बचती। क्योंकि अगर नई चीज़ नहीं

बिकी, तो घर का ख़र्च कैसे चलेगा?

हाँ, अगर कहीं से कुछ और पूँजी (पैसा) मिल जाए तो शायद यह जोखिम उठाने की हिम्मत की जा सकती है। तभी लीक से हटकर नया कुछ होने की सम्भावना हो सकती है। जैसे कुछ समय पहले ज़िला उद्योग बैंक की ओर से शाहपुर के कुछ कुम्हारों को बिजली से चलने वाला चाक दिया गया था। इसे चलाने में मेहनत कम लगती थी, और कम समय में अधिक मटके बन जाते थे। फिर भी वे चाक उनके मन-माफिक नहीं थे - सो उन्होंने बेच दिए।

धुन्नीलाल के दो लड़के हैं। मैंने पूछा, "वे दोनों तो मटके बनाना सीख रहे होंगे?"

"सीख तो रहे हैं, पर उनसे यह काम नहीं करवाना है आगे।" धुन्नीलाल बोले, "हम तो चाहते हैं कि दोनों पढ़ाई पूरी करें और कोई पक्की नौकरी में लगें।"

शायद उनके सामने इस कला को आगे बढ़ाने से ज़्यादा ज़रूरी बेहतर जीवन बिताने के सवाल हैं। एक तो इस काम में धंधा साल में कुछ ही महीने चलता है - जनवरी से मई-जून तक जब लोग गर्मियों के लिए नए मटके ख़रीदते हैं, और बरसात से पहले घर ठीक करने के लिए कवेलू। उसके बाद और धन्धों में लगना पड़ता है - जैसे मकान बनाने में, खेतों में मज़दूरी। पहले लोग मिट्टी के बरतनों में खाना बनाते थे तब बारहमासी काम होता था। अब तो स्टील, पीतल के बर्तन हैं सबके घर। धुन्नीलाल के घर भी।

दूसरी बात यह है कि जितनी लागत है इस काम में, उतनी कमाई नहीं होती। एक महीने में धुन्नीलाल का परिवार लगभग 400 मटके बनाता है - यानी 100 मटके प्रति सप्ताह। इसमें 300 रुपए की मिट्टी लगती है। 600 रुपए की लकड़ी (पकाने में), 15-20 किलो रंग (झीप, सफेद और लाल खड़िया मिट्टी)। एक मटके के लिए 2 कण्डे लगते हैं, और 100 कण्डे आते हैं 50 रुपए के। इसके अलावा घर के सभी सदस्यों की दिन भर की मज़दूरी। धुन्नीलाल के यहाँ 6 लोग इसी काम में पूरी तरह लगते हैं, बच्चे भी हाथ बँटाते हैं। फिर एक मटका 12-15 रुपए का बिकता है। अब बाकी का हिसाब तुम लगाओ। और हाँ पके हुए मटके या बर्तन जो टूट फूट जाते हैं वो नुकसान भी होता है। क्योंकि पकी हुई मिट्टी से फिर दुबारा कुछ नहीं बनाया जा सकता।

धुन्नीलाल यह सारा हिसाब समझाने के बाद मुस्कराते हुए बोले, "हमारे यहाँ एक कहावत है -

"इक्का बढ़ई, दुक्का लुहार,
और जन बच्चा, सब पिले कुम्हार।"

मतलब तो कुछ-कुछ तुम समझ ही गए होगे। बढ़ई के काम में एक आदमी लगता है, लुहार के यहाँ दो, और कुम्हार के यहाँ बड़े, बच्चे, घर के सभी लग जाते हैं काम में।

"हमारे यहाँ तो मेहमान भी आते हैं, तो वो भी काम में लग जाते हैं," गौराबाई हँसती हुई बोलीं, "और समय का तो कोई बंधन ही नहीं रहता। देर रात, सबेरे जल्दी उठकर, जब हो सके काम करते हैं, ताकि अधिक से अधिक मटके बन सकें।"

कुम्हार समाज के कुछ लोग ऐसी ही कुछ परेशानियों के कारण से मटके बनाना बन्द करके, ईंट बनाने का धन्धा करने लगे हैं।

परम्पराएँ एकदम से ख़त्म तो नहीं होतीं। पर कई बार ऐसी परिस्थितियाँ, ऐसे हालात बन जाते हैं कि इनमें धीरे-धीरे बदलाव होने लगता है। अब जैसे, धुन्नीलाल और गौराबाई को कई कारणों से लगता है कि उनके बच्चे कुम्हार न बनें। मान लो इन बच्चों को कोई नौकरी मिल जाती है तो उनके परिवार में मटके बनाने का काम तो बन्द ही हो जाएगा। जो कुम्हार ईंट बनाने में लग गए उनके यहाँ भी अब मटके बनाने की परम्परा ख़त्म ही हो गई न? यही एक परम्परा में बदलाव की या उसके ख़त्म होने की प्रक्रिया है। हो सकता है धुन्नीलाल के बच्चे तो यही काम करें पर उनकी अगली पीढ़ी में ऐसा कोई परिवर्तन हो। तुम्हारे परिवार में, या आसपास के परिवारों में भी परम्परागत काम में बदलाव हुआ है क्या? पता करना। ❑

वेणु एंडले एकलव्य के प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम में काम करती हैं। वे शाहपुर ज़िला बैतूल में रहती हैं। सभी फोटो : वेणु एंडले।

मटकों की भट्टी

शाहपुर में बाज़ार बुधवार को लगता है। मंगल की शाम को पूरी सड़क पर घनघोर धुएँ के बादल छा जाते हैं। सोचो क्यों? सभी कुम्हार हफ्ते भर में बनाए कच्चे मटकों को पकाते हैं। ताकि बाज़ार में बिकने के लिए अगली सुबह तक तैयार हो जाएँ। हर कुम्हार के घर के पास ईंटों का तीन फुट ऊँचा आधा घेरा बना दिखता है। यही भट्टी है, जिसमें मिट्टी की सभी चीज़ें पकाई जाती हैं।

घेरे में पहले नीचे, ज़मीन पर पतली-पतली लकड़ियाँ बिछाते हैं। घेरे की दीवार के सहारे भी इन लकड़ियों को पास-पास लगाते हैं। फिर हर मटके में जलते हुए दो-दो कंडे डालते हैं। फिर इन मटकों को लकड़ियों पर जमाते हैं।

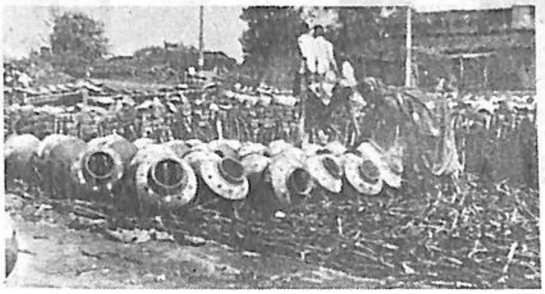

जमाने के लिए मटकों को आड़ा रखा जाता है। दो-दो मटकों की लाइन बनाई जाती है। इसमें मटकों के पेंदे एक-दूसरे से सटे होते हैं, मटकों के मुँह बाहर की ओर होते हैं और खुले हुए रहते हैं। फिर मटकों की इस लाइन पर सीधे मटकों की एक लाइन लगाई जाती है। इन मटकों के मुँह ऊपर की ओर खुले होते हैं। पूरे घेरे में मटकों की ऐसी पन्द्रह से बीस लाइन होती हैं। जब मटकों की जमावट पूरी हो जाती है, तब उन पर मिट्टी की बाक़ी चीज़ें, जैसे बर्तन, तवे, कवेलू आदि जमाए जाते हैं। लेकिन यह ध्यान रखा जाता है कि मटकों के मुँह खुले रहें।

सब चीज़ों के जम जाने के बाद भट्टी के खुले हिस्से को भी लकड़ियाँ बिछाकर बन्द कर देते हैं। फिर इसके ऊपर और लकड़ियाँ तथा कंडे बिछाते हैं। इन सबके ऊपर सागौन के बड़े-बड़े हरे पत्ते बिछाकर पूरी भट्टी को ढक दिया जाता है। फिर भट्टी को जलाते हैं अलग-अलग कोनों से।

यह तो हुई भट्टी की बनावट और जमावट। लेकिन भट्टी पूरी गोल क्यों नहीं बनती? मटके के अन्दर कंडे क्यों डालते हैं? ऊपर से सागौन के पत्ते क्यों बिछाते हैं? ऐसे कई सवाल मन में आए।

धुन्नीलाल से बात करने पर कुछ-कुछ समझ में आया। भट्टी एक तरफ से खुली होने से हवा अन्दर जाती रहती है। जिससे भट्टी का तापमान ज़रूरत से ज़्यादा नहीं बढ़ पाता। अगर गर्मी ज़्यादा हो जाए तो मटके टूट जाते हैं।

ऊपर से सागौन के पत्ते इसलिए बिछाते हैं, ताकि ज़्यादा से ज़्यादा गर्मी भट्टी में ही रहे। सागौन के हरे पत्ते जलते नहीं हैं तो आग की लपटें ऊपर नहीं निकल पाती हैं।

मटके के अन्दर जलते हुए कंडों के रहने से, मटकों के अन्दर और बाहर दोनों तरफ बराबर गर्माई मिलती है।

हर तरफ से एक-सी गर्मी मिले यह ख़ास बात है। इसमें थोड़ी भी गड़बड़ हो तो मटके टूट जाते हैं। या फिर ठीक से पकते नहीं हैं। पकाते समय अगर बादल आ जाएँ, हवा में नमी हो तो भी ठीक से नहीं पकते। इसी वजह से इस साल अक्टूबर से जनवरी तक जो बीच-बीच में बारिश होती रही, उससे कुम्हारों का काफी नुकसान हुआ।

भट्टी की आग को बुझाते नहीं हैं। भट्टी शाम को 4-5 बजे जलाते हैं, 5-6 घंटे आग जलती है। फिर रात भर ठण्डा होने को छोड़ देते हैं। सुबह ही निकालकर देखते हैं कि क्या बना, क्या बचा?

लेख तथा फोटो : वेणु एंडले

वर्ग पहेली - 82

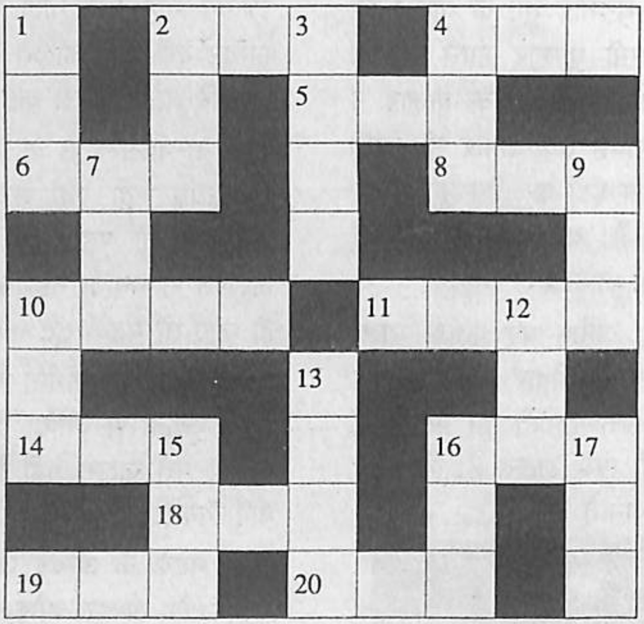

संकेत : बाएँ से दाएँ

2. पलंग पर खटमल में है जाँच (3)
4. रवि का बस्ता है फैलाव (3)
5. चालाकी न करना, अदालत में पेश हो जाओगे (3)
6. भार (3)
8. आरती मार-मारकर सेवा करती है (3)
10. अपमान या अवहेलना (4)
11. आका नानी में टालमटोल (4)
14. लकड़ी का बना थाल या वैसा ही बर्तन (3)
16. असगरी बीमार है में ढूँढो निर्धनता (3)
18. गोबर थापकर कण्डे बनाने वाला (3)
19. शुद्ध, मिलावट रहित (3)
20. अनाज में मिला कंकड़-पत्थर आदि (3)

संकेत : ऊपर से नीचे

1. सब्जी आदि डालकर घी या तेल में पके चावल (3)
2. हवा (3)
3. पूरा भरा हुआ (4)
4. प्रार्थना (3)
8. महज़ मीर में ढूँढो अन्तर्मन (3)
9. नीरज में कहाँ है रात? (3)
10. लोकमान्य का नाम या टीका (2)
12. साकार या निराकार ईश्वर को न मानना (3)
13. पुलों के नीचे या दरवाज़ों के ऊपर बनी अर्धगोलाकार आकृतियाँ (4)
15. जो तप या साधना करे (3)
16. पोटली (2)
17. ऊबड़-खाबड़ ज़मीन या बहुत कठिन काम (3)

इस पहेली का मूल रूप हमें भेजा है मायाराम सोनकर ने रुदगाँव, राजनांदगाँव ,म.प्र. से।

वर्ग पहेली – 82 का हल जुलाई, 1998 के अंक में देखें। हल भेजने के लिए वर्ग पहेली की जाली को चकमक से न काटें। बल्कि संकेतों के नम्बर डालकर शब्द लिखकर भेज दें। सर्वशुद्ध हल भेजने वालों को चकमक का जुलाई 1998 अंक उपहार में भेजा जाएगा।

आमजी

खट्टे मीठे आम जी।
हरे पीले आमजी।
फलों का राजा कहलाता यही।
है अकेला रसीला आमजी।
झुके - झुके ये गुदेदार।
देख मुँह से टपके लार।
नाम के हैं आम पर।
आते खास काम जी।
फलों का राजा कहलाता।
यही अकेला आमजी।

हेमंत साहू, छठवीं, डौण्डी, दुर्ग, म.प्र.

मिट्टी से मटका

इस चित्र में मिट्टी से मटका तथा अन्य चीज़ें बनने की कहानी है। लेकिन कहानी का एक ज़रूरी हिस्सा छूट गया है। क्या है वह? बूझो तो जानें।

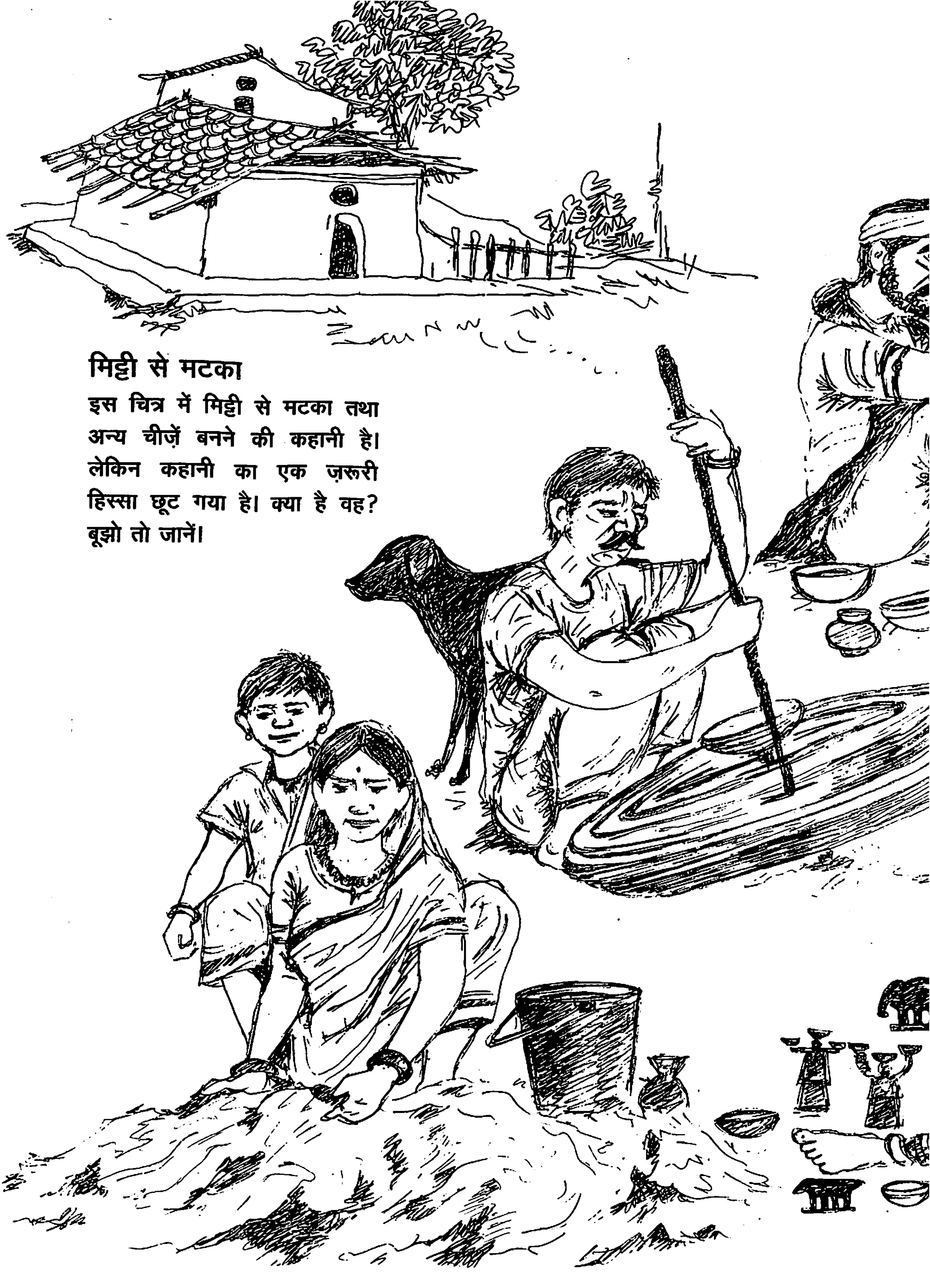

चित्र : मनोज कुलकर्णी

झूठ

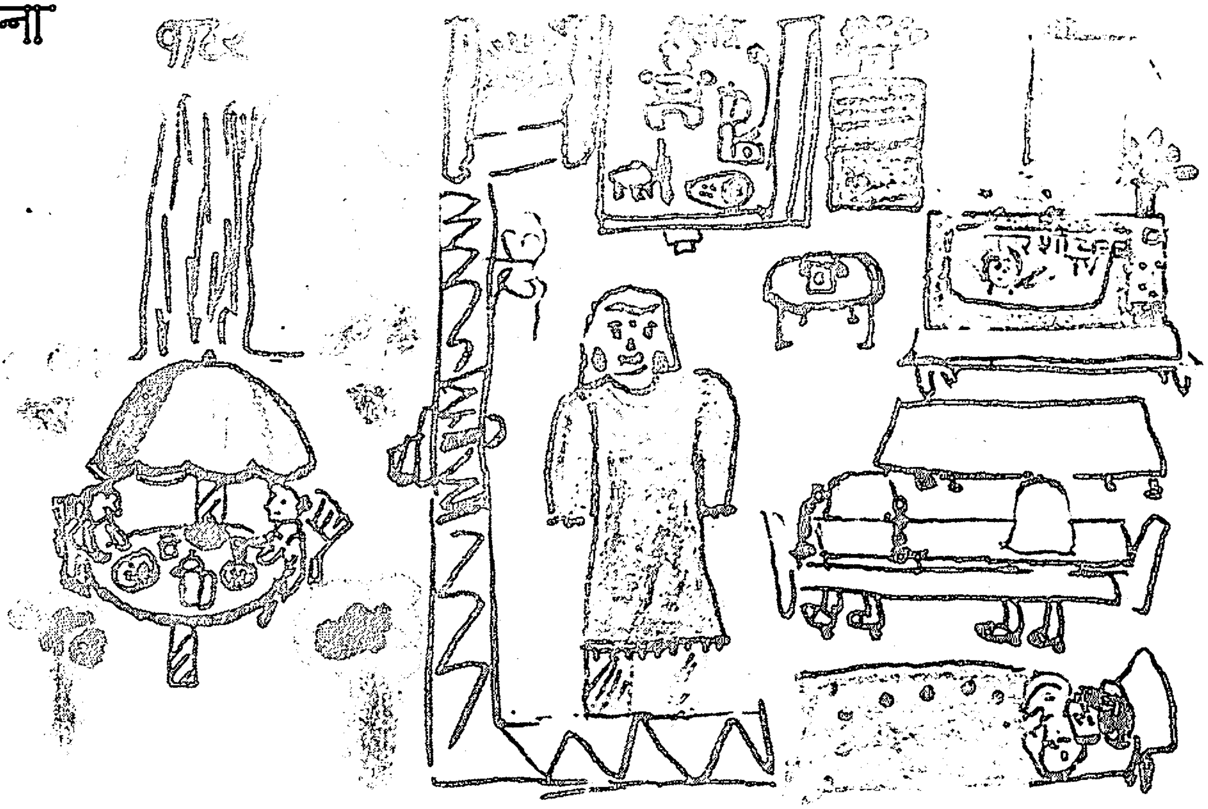

दिव्यवाणी सिंघई, ग्यारहवीं, सागर, म. प्र.

एक दिन हमारे यहाँ कुछ मेहमान आए। एक अंकल, एक आंटी और उनका छोटा-सा बच्चा। बच्चा बहुत ही शैतान था। उसने पिछली बार आकर मेरा मिट्टी का छोटा-सा घड़ा तोड़ दिया था। गुस्सा तो आया मगर पहली बार में माफ़ कर दिया था। इस बार तो सीधे उसने मेरी गुड़िया तोड़ दी। और जब मैंने उससे कुछ नहीं कहा तो मेरा खिलौनाघर भी चकनाचूर कर दिया। मेहमानों को यह बात पता न चली। सो मैंने झट से जाकर बच्चे को एक चाँटा जमा दिया। वह रोने लगा। मैंने भी झटपट अंकल के पास जाकर कहा कि 'देखिए, वह गिर गया तो कह रहा है कि मैंने उसे मारा है। कितना झूठा है।' बेचारा तीन साल का था। चाँटे का निशान गाल पर साफ़ दिखाई दे रहा था। फिर भी सबके सामने क्या कहते।

अगले दिन सुबह-सुबह दरवाज़े की घंटी बजी। दरवाज़ा खोला तो देखा कि अंकल खड़े थे। उनके हाथ में एक बड़ा और एक छोटा डिब्बा था। मैंने जब उन डिब्बों को खोलकर देखा तो उसमें मेरे टूटे गुड़िया और खिलौनेघर से कहीं बड़े गुड़िया और खिलौनाघर निकले। मैं समझ गई कि अंकल को सब पता चल गया है। मैंने तुरन्त अंकल से माफ़ी माँगी और कहा कि आगे से मैं कभी झूठ नहीं बोलूँगी। अंकल भी खुश हो गए। मैंने वह झूठ बोलने वाली आदत छोड़ दी।

पल्लवी नौटियाल, छठवीं, रांची, बिहार

कप बनाओ

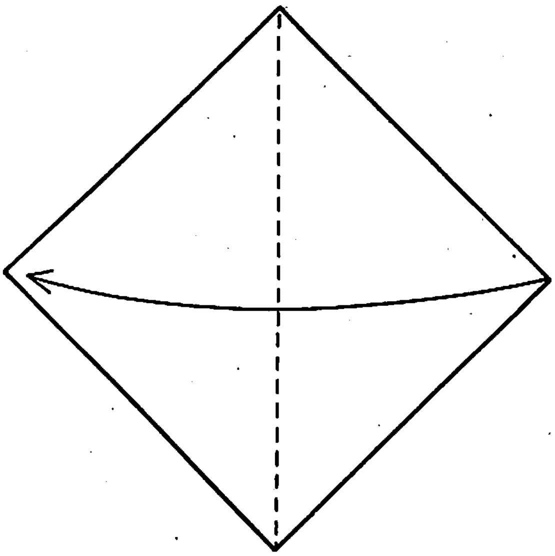

1. एक वर्गाकार कागज़ लो। चित्र के अनुसार टूटी रेखा पर से तीर की दिशा में मोड़ लो।

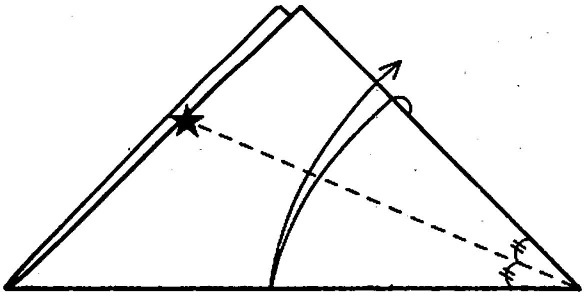

2. अब मुड़ी हुई आकृति को घुमाकर जुड़ा हुआ किनारा नीचे की तरफ कर लो।

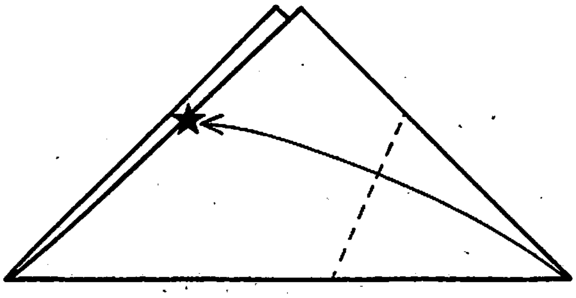

3. चित्र में दिखाई दे रही टूटी रेखा पर से तीर की दिशा में मोड़ बना लो।

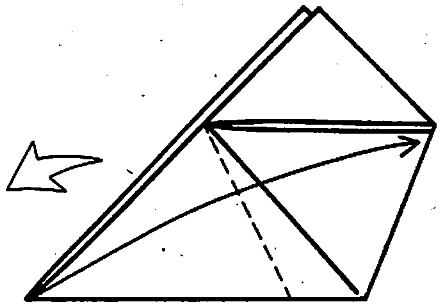

4. इस तरह। चित्र में दिख रही टूटी रेखा पर से तीर की दिशा में मोड़ बनाओ।

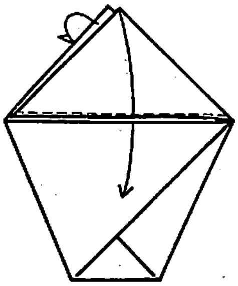

5. इस तरह की आकृति बनेगी। चित्र में दिख रही टूटी रेखा पर से तीर की दिशा में मोड़ बनाते हुए ऊपरी परत को नीचे लाओ। आकृति को पलटकर दूसरी परत को दूसरी तरफ मोड़ दो।

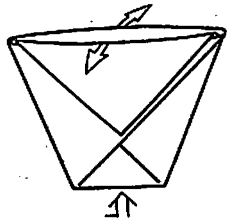

6. ऊपर के हिस्से को थोड़ा चौड़ा करो। और नीचे से चपटा करके आधार बनाओ।

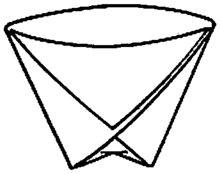

7. कप बन गया। इसमें थोड़ी रेत या मिट्टी भरकर ठीक से खड़ा कर सकते हो। फिर चाहो तो इसमें फूल सजा लो।

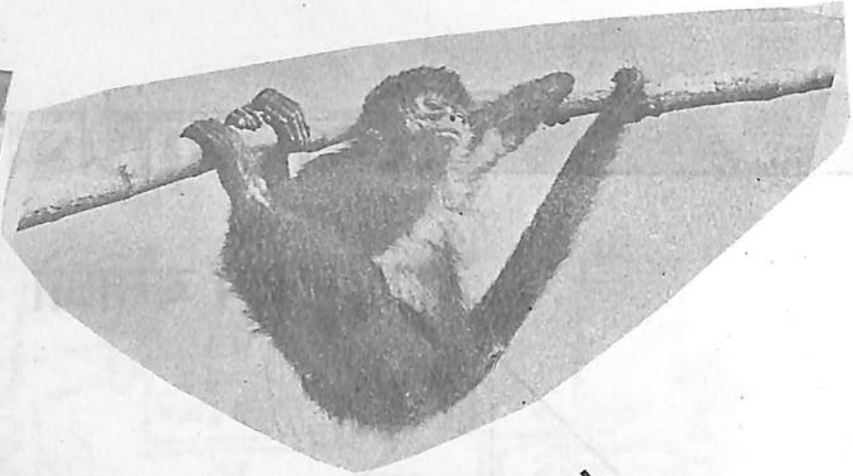

दुम में दम

पूँछ गिलहरी की झबरैली
कुत्ते की क्यों टेढ़ी,
लम्बे-घने बाल वाली
घोड़े की पूँछ घनेरी।

गज की लम्बी सूँड़, मगर
दुम होती कितनी छोटी,
कंगारू की दुम होती
लम्बी, भारी औ' मोटी।

अपनी पूँछ से चतुर लोमड़ी
मुँह ढककर सो जाती,
लम्बी पूँछ लंगूर की
जादू के करतब दिखलाती।

शेर की दुम के आखिर में
होते ब्रश जैसे बाल,
बाघ और चीते की दुम भी
करती खूब कमाल।

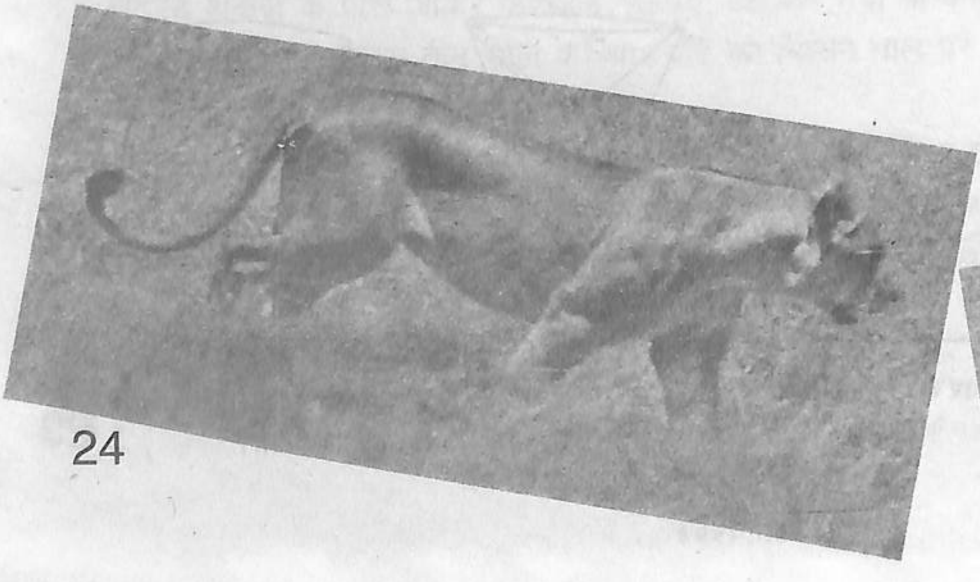

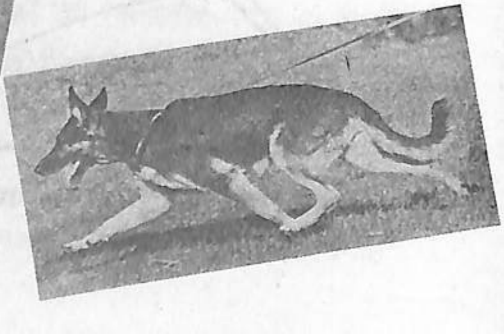

दुम अलबेली छिपकली की
खतरा दूर भगाती,
खुद शरीर से गिरकर
छिपकली की जान बचाती।

हाथ, पाँव, पर बन जाती दुम
समय देखती जैसा,
एक जानवर होता ऐसा
जिसकी दुम पर पैसा।

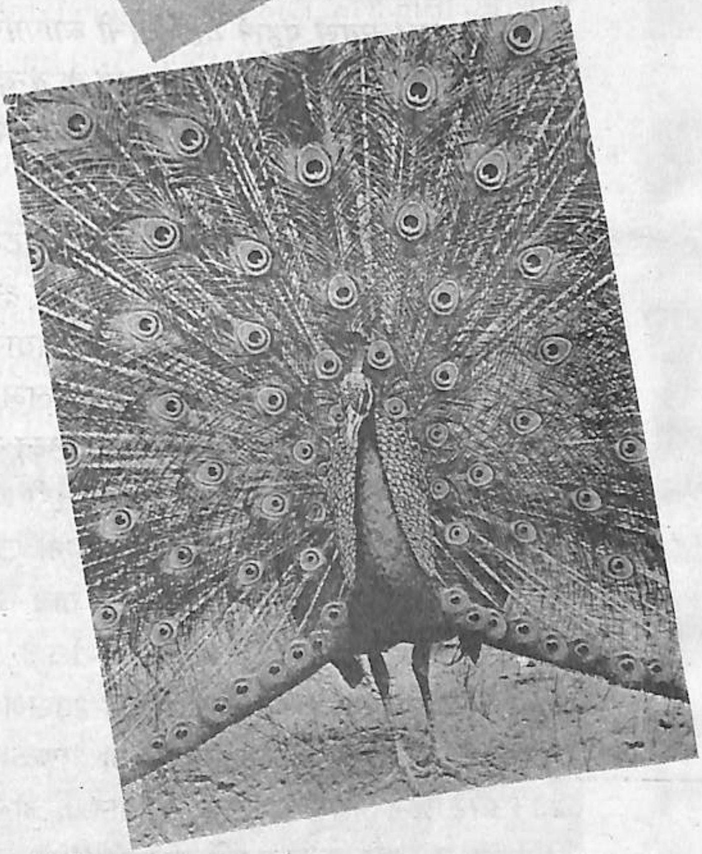

दुम शरीर की करे हिफाज़त
दुम की महिमा न्यारी,
दुम दबाकर कभी न भागो
यह कायरता भारी।

सीधी, टेढ़ी, लम्बी, छोटी
पूँछ बड़ी अनुपम है,
अवसरवादी दुम हिलाते
दुम में कितना दम है!

❑ भगवती प्रसाद द्विवेदी

मलाबार का मोपला जन-आन्दोलन

हमारी आज़ादी की लड़ाई में यह बात कई बार देखने को मिलती है कि जहाँ भी हिन्दू और मुसलमानों की मिली–जुली आबादी हो, वहाँ किसी भी तरह के जन विरोध को अंग्रेज़ शासन साम्प्रदायिक दंगों में बदलने की कोशिश करता था। यह बात केरल के मलाबार अंचल पर भी लागू होती है। आज मलाबार नाम की जो जगह केरल में है, अंग्रेज़ी हुकूमत के दौर में वह मद्रास राज्य में आती थी। और दक्षिणी भारत के पूरे पश्चिमी तट – कोज़ीकोड (तब कालीकट) से लेकर कन्याकुमारी तक – को मलाबार तट कहा जाता था। मलाबार तट 1400 ईसवी से भी पहले से विदेशी व्यापारियों के लिए खास आकर्षण का केन्द्र था। सबसे पहले यहाँ चीनी व्यापारियों के जहाज़ खूब आते थे। फिर फ्रांसीसी, डच और पुर्तगालियों का दबदबा रहा। इस तट के बन्दरगाहों के ज़रिए सदियों से काली मिर्च, लौंग, तेजपान जैसे मसालों और सूती कपड़े आदि का व्यापार होता था।

ये तो बहुत पुरानी बातें थीं। आगे की घटना बीसवीं सदी के शुरुआत की है। मलाबार क्षेत्र के लगभग सभी ताल्लुकों के मूल निवासी मोपला कहलाते थे। इनमें अधिकतर मुसलमान थे। लेकिन यहाँ के अधिकांश ज़मींदार हिन्दू थे। मोपला लोगों की हालत बहुत अच्छी नहीं थी। वे या तो ग़रीब किसान थे या मामूली खेत मज़दूर। अपनी बदहाली के ख़िलाफ़ जब-जब इन लोगों ने आवाज़ उठाने की या विरोध करने की कोशिश की थी, तब-तब अंग्रेज़ शासन ने इनके ख़िलाफ़ हिन्दू ज़मींदारों को भड़काया था। और फिर अपने हक़ों को हासिल करने की कोशिश में उठी आवाज़ को साम्प्रदायिक दंगों का नाम देकर कड़ी कार्यवाही करके कुचल दिया जाता था।

1920-21 के बाद इस इलाके के हालातों में बहुत बदलाव आया। वह समय था असहयोग आंदोलन और ख़िलाफ़त आंदोलन का। इस दौरान महात्मा गाँधी और मौलाना शौकत अली ने इस पूरे इलाके का दौरा कर अंग्रेज सरकार के विरुद्ध एकजुट होने का आह्वान किया। असहयोग आंदोलन और ख़िलाफ़त आंदोलन के मिले-जुले प्रयासों को इस क्षेत्र से बहुत उत्साहजनक जवाब मिला। पूरे क्षेत्र में गाँव-गाँव में ख़िलाफ़त कमेटियाँ बनाई गईं।

मौलाना शौकत अली

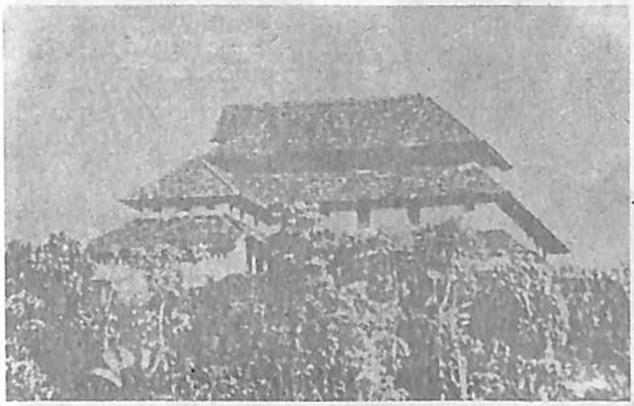

एरनाद की तिरुरंगादि मस्जिद

शुरू में ख़िलाफ़त का सबसे ज़्यादा असर मोपलाओं के दो सबसे मज़बूत गढ़ एरनाद और भाल्लूभामद में था। यहाँ का सारा काम एरनाद की तिरुरंगादि मस्जिद से संचालित होता था। लेकिन 20 अक्टूबर 1921 को हुई एक घटना के बाद इस आंदोलन ने एक जन-अभियान का रूप ले लिया।

उन दिनों एरनाद और भाल्लूभामद के ताल्लुकों में पुलिस ने धारा 144 लगाई हुई थी। धारा 144 मतलब किसी भी वजह से एक जगह अगर पाँच या पाँच से ज़्यादा लोग इकट्ठे हो जाएँ, तो उन्हें गिरफ़्तार किया जा सकता था। यह तैयारी थी एरनाद के ख़िलाफ़त समिति के अगुवा को गिरफ़्तार करने की। पुलिस को लगा था कि धारा 144 के डर से लोग अपने घरों से बाहर नहीं निकलेंगे और वे बिना किसी रोक-टोक के ख़िलाफ़त समिति के नेता को पकड़ लेंगे। पर 20 अक्टूबर को जब पुलिस इस काम को अंजाम देने पहुँची तब एरनाद के ग्रामवासियों ने धारा 144 तोड़ते हुए भाले, तलवार आदि से लैस होकर उन्हें रोका। इस तरीके के नाकाम होने के बाद पुलिस अधीक्षक की अगुवाई में एक विशाल पुलिस की टुकड़ी ने वहाँ के नेता की तलाश में तिरुरंगादि मस्जिद में जबरिया प्रवेश किया।

इस घटना से पूरे इलाके के लोगों में अंग्रेज़ी हुकूमत के खिलाफ गुस्सा फैल गया। इसके बाद इस पूरे क्षेत्र के हिन्दू-मुसलमान, सभी ने ख़िलाफ़त आंदोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। इन लोगों ने एकजुट होकर एक-के-बाद-एक पुलिस थानों पर कब्ज़ा किया, सरकारी खज़ाने लूटे और अदालतों व रजिस्ट्रार दफ्तरों में जाकर सरकारी कागज़ातों को आग लगाई। इस आंदोलन को स्थानीय स्तर पर जुझारू नेता अलि मुसालिया ने आगे बढ़ाया था। उस समय के इतिहासकारों ने लिखा है कि इस दौर में इस इलाके के सिर्फ शहरों में ही अंग्रेज़ शासन बचा था। गाँवों और कस्बों में विद्रोहियों का ही पूरा राज कायम था। अंग्रेज़ सरकार के मुताबिक करीब 10 लाख लोग इस आंदोलन में शरीक थे।

कुछ मोपला जिन्हें सज़ा के लिए अंडमान भेज दिया गया था। ये लोग फिर अंडमान में ही बस गए।

सेल्यूलर जेल , अंडमान

इतने बड़े इलाके में अपनी हार से तिलमिलाकर अंग्रेज़ शासन ने इस विद्रोह से निपटने के लिए सैनिक शासन लागू कर दिया। इसके बाद इन विद्रोहियों से बहुत निर्ममता और बर्बरता से निपटा गया। ऐसी ही एक घटना हुई जिसमें लगभग 122 लोगों को गिरफ़्तार करके रेल के एक डिब्बे में बंद कर दिया गया। दिन था 19 नवंबर 1921 का और जगह थी तिरूर। रेल वहाँ से चली तो लगभग 90 मील दूर कोयम्बटूर में जाकर डिब्बे को खोला गया। तब तक 64 लोग घुटन और साँस रुकने के कारण मारे जा चुके थे। एक अनुमान के मुताबिक इस तरह की कई घटनाओं में लगभग 10,000 लोग मारे गए। इसके अलावा करीब 3000 लोगों को आजीवन या लम्बे समय के कारावास की सज़ा सुनाकर अंडमान द्वीपों पर भेज दिया गया।

ऐसा माना जाता है कि सन् 1857 की आज़ादी की पहली लड़ाई और उसके दो साल बाद हुए सन्थाल विद्रोह के बाद यही एक जनांदोलन है जिसमें इतनी बड़ी संख्या में लोगों को जान की बाज़ी लगानी पड़ी थी। विद्रोह के दमन के दौर में सबसे पहले जो 46 लोगों को सज़ा सुनाई गई थी उनमें नारायण मेनन, मोहम्मद रहमान, हसन कयर, के. कानापूम, माधवन नबी, मइदू मौलवी, नम्बुदिरी आदि प्रमुख थे। जेल की सज़ा काटने अन्दमान गए कई मोपला बाद में वहीं बस गए थे और अब उनके वंशज वहीं रहते हैं। ■

इस लेख के लिए जानकारी व चित्र पश्चिम बंगाल सूचना एवं संस्कृति विभाग द्वारा प्रकाशित ग्रंथ 'मुक्तिर संग्रामे भारत' से साभार ली गई है। सेल्यूलर जेल का चित्र 'अंडमान एंड निकोबार आइलैंड इन दी सन' से साभार

मौलाना शौकत अली का रेखांकन - प्रीति भटनागर

नीली विपत्ति

❑ अनीष देव

राकेश गहरी नींद में नीले सियार का सपना देख रहा था। कल रात को ही उसने कहानी पढ़ी थी कि एक सियार अचानक नील के टब में गिरकर नीले रंग का हो गया। उसके बाद जब वह जंगल में पहुँचा तो जंगल के पशु-पक्षियों ने उसे जंगल के राजा के रूप में स्वीकार कर लिया, क्योंकि उन्होंने कभी भी नीले रंग का सियार नहीं देखा था। इसलिए उन सबने उस अद्‌भुत जानवर को अपना राजा चुन लिया।

राकेश सपना देख रहा था कि उसे एक नीले रंग का सियार बुलाकर कह रहा है, "राकेश बाबू, राकेश बाबू, मैं उस कहानी का सियार नहीं हूँ, बल्कि सचमुच मैं नीले रंग का सियार हूँ।"

राकेश ने थोड़ी देर आश्चर्य से देखा और फिर पूछने लगा, "क्या यह सच है?"

"बिल्कुल सच।" सियार ने जवाब दिया।

उसके बाद राकेश को आश्चर्यचकित करते हुए सियार 'मियाऊँ, मियाऊँ' करने लगा। राकेश चौंक उठा। 'कभी सियार मियाऊँ, मियाऊँ करता है?' उसने अपने आपसे पूछा। फिर एक झटके के साथ उसकी नींद टूट गई।

नींद खुलते ही उसने देखा कि उसके बिस्तर पर उसके पास एक नीले रंग की बिल्ली उकड़ूँ बैठी है, जो मियाऊँ-मियाऊँ कर रही है। उसकी नीली आँखें काँच की गोलियों की तरह ही चमक रही थीं और वह लगातार राकेश की तरफ ही देख रही थी। झाड़ू की सीकों की तरह और पतली नीले रंग की उसकी मूँछों ने राकेश का ध्यान आकर्षित किया। शरीर गाढ़े नीले रंग का था, सिर्फ पूँछ के सिरे पर एक काला धब्बा था।

राकेश ने सोचा कि शायद उसका सपना अभी तक नहीं टूटा। उसने सोचा, जरा चुटकी काटकर देखूँ तो! 'यह क्या! उसका सफेद रंग नीला कैसे हो गया?' उसने हैरान होकर अपने आपसे पूछा। उसके बाद, एक-एक करके अजीब सी घटनाएँ राकेश के सामने होने लगीं।

घर की दीवारें, चादरें, तकियों के गिलाफ, मेज़-कुर्सी, पंखा, यहाँ तक कि कमरे का फर्श, सभी कुछ नीले रंग का हो गया। कोई चीज़ चमकीले नीले रंग की, कोई मटमैले नीले रंग की, कोई काले-नीले रंग की तथा कोई पूरी तरह काले रंग की हो गई थी।

बिस्तर पर बैठी हुई बिल्ली अब भी मियाऊँ, मियाऊँ किए जा रही थी।

राकेश घबराकर उठ बैठा। उसने देखा कि उसकी माँ आसपास कहीं नहीं है। वह बहुत पहले ही उठ चुकी थी। शायद वह रसोईघर में होगी। राकेश को रोना आ गया। किसी तरह वह चीख उठा, "माँ, माँ!"

माँ आवाज़ सुनते ही दौड़ी चली आई।

माँ को देखते ही वह फूट-फूटकर रोने लगा।

उसके शरीर का रंग गाढ़ा नीला पड़ गया था। सिर्फ आँखों की पुतलियाँ काली थीं, बाकी भाग का रंग चटकीला नीला हो गया था। यद्यपि सिर के बाल पहले की तरह काले थे।

राकेश बिस्तर से उतरा और दौड़कर अपनी माँ से लिपट गया। माँ के पल्लू में मुँह छिपाकर रुँधे हुए स्वर में कहा, "यह सब क्या है माँ? क्या यह सब मैं गलत देख रहा हूँ?"

माँ उसके बालों को सहलाने लगी। प्यार से आश्वासन देते हुए वह कहने लगी, "नहीं बेटा, तूने गलत नहीं देखा। हम सभी को हर चीज़ नीले रंग की दिख रही हैं। सबेरे नींद टूटते ही मैंने यह हालत देखी। लेकिन डरने की कोई बात नहीं। कुछ ही देर पहले रेडियो और टी.वी. से पता चला है कि सारे विश्व भर में इस तरह की घटना घटी है। इससे डरने का कोई कारण नहीं है। सब ठीक हो जाएगा।"

माँ की बातों को सुनकर राकेश आश्वस्त नहीं हुआ। उसने बिस्तर पर बैठी बिल्ली की तरफ इशारा करते हुए कहा, "उधर देखो!"

माँ हँसी और बोली, "वह तो तेरी मीनू है। बाकी चीज़ों की तरह उसका रंग भी नीला हो गया है। चलो, अब हाथ-मुँह धोकर पढ़ने बैठो।"

माँ को रोज़ की तरह स्वाभाविक देखकर राकेश का आश्चर्य और भय धीरे-धीरे कम होने लगा। माँ के रसोई में जाते ही उसने अपने टूथब्रश में थोड़ा-सा टूथपेस्ट लगा लिया। टूथब्रश का रंग वैसे भी नीला था, अतः उसका रंग नहीं बदला। लेकिन सफेद टूथपेस्ट गाढ़े नीले रंग में परिवर्तित हो गया था।

मुँह धोने के लिए जब वह वॉश-बेसिन के पास पहुँचा तो सफेद वॉश-बेसिन का रंग भी नीला पाया। अब तक उसका डर मन से निकल गया और उसके मन में एक हर्ष भरा कौतूहल जाग उठा। हाथ-मुँह धोकर वह इधर-उधर देखने लगा।

माँ खाना बनाना छोड़कर बरामदे के रेलिंग का सहारा लेकर पड़ोस में रहने वाली टूकी की माँ के साथ बातें कर रही थी। दोनों हँस भी रही थीं।

राकेश ने सुना, पड़ोस की मौसी कह रही है, "दीदी, भात का जो आज रूप बना है, वह देखने लायक है। मुझे नहीं लगता कि टूकी के पिता आज आफिस जाते समय उसे खाकर जाएँ।"

सच तो है, नीले रंग का भात खाना क्या मज़ाक है! राकेश सोचने लगा।

राकेश की माँ कहने लगीं, "मेरी भी तुम्हारी जैसी हालत है, बहन। भात, दाल, हल्दी, मिर्च सभी का रूप बदल गया है।"

टूकी की माँ बहुत चिंतित नज़र आ रही थी। उसने कहा, "रातों-रात यह कैसा जादू हो गया दीदी? मुझे तो लगता है दाल में कुछ काला है।"

राकेश की माँ ने कहा, "थोड़ी देर पहले ही रेडियो में आया है कि वैज्ञानिक इस विषय पर काफी छानबीन कर रहे हैं। जल्दी ही वे इसका समाधान कर लेंगे।"

राकेश वहाँ और नहीं रुका। दौड़कर उस बाल्कनी में पहुँचा जहाँ से सड़क नज़र आती थी। अरे! यह क्या! उदय होते सूर्य का रंग भी गहरा नीला है। आकाश के नीले रंग में जैसे वह समा गया है। चारों तरफ नीली धूप बिखरी हुई थी। पेड़-पौधों का रंग भी नीला दिखाई दे रहा था। सिर्फ काले रंग के कौए नीले रंग के टी.वी. एंटीना के ऊपर बैठकर पहले की तरह 'काँव-काँव' कर रहे थे।

राकेश हैरान होकर चारों ओर देखता रहा।

थोड़ी देर बाद माँ भी बाल्कनी में आकर खड़ी हो गई। उसके हाथ में दूध का एक गिलास था। उससे संबोधित हो माँ ने कहा, "लो राका, जल्दी से दूध पी लो। गैस जलती छोड़कर आई हूँ।"

राकेश ने दूध का गिलास हाथ में लेते हुए मुँह घुमाकर प्रार्थना भरे स्वर में कहा, "तुम्हीं बोलो माँ, ऐसा दूध क्या कोई पी सकता है?"

माँ ने व्यस्तता दिखाते हुए कहा, "हाँ-हाँ, सब हो सकता है। यदि हर चीज़ का रंग हमेशा के लिए नीला ही रह जाए तो बताओ, क्या करोगे। दूध, भात, वगैरा सभी कुछ नीले रंग का - खाने की आदत तो डालनी ही होगी। क्यों ठीक है न! इंसान बिना खाए तो रह नहीं सकता। लो, जल्दी से पीकर गिलास बेसिन में रख देना। मैं जा रही हूँ....।"

माँ व्यस्त पाँवों से लौट रही थी कि राकेश ने पूछा, "पिताजी क्या अभी तक नहीं आए?"

माँ ने कहा, "नहीं। लगभग एक घंटा हो गया उन्हें बाजार गए। लगता है बाज़ार में कोलाहल मच गया है। लो, दूध जल्दी खत्म करो।"

माँ उसे विचारों में खोया छोड़ पलक झपकते ही वहाँ से चली गई।

राकेश ने सावधानी के साथ दूध के गिलास से एक घूँट दूध पिया। लगा, उसे उबकाई आ जाएगी। लेकिन दूध का स्वाद पहले जैसा ही था, सिर्फ रंग बदल जाने से ही खाने-पीने की इच्छा क्यों बदल जाती है? नहीं तो राकेश को दूध बहुत भाता है।

मीनू अब बिस्तर से उतरकर उसके पैरों के इर्द-गिर्द मियाऊँ-मियाऊँ करती घूमने लगी थी। शायद उसे दूध की खुशबू मिल गई थी। राकेश ने सोचा, उसे थोड़ा-सा दूध देकर देखा जाए कि वह पीती है या नहीं। राकेश ने गिलास से थोड़ा-सा दूध ज़मीन पर ठीक मीनू के सामने डाल दिया। बिल्ली दूध को देख अचकचा गई।

राकेश ने अपने पिताजी से सुना था कि कुत्ता, बिल्ली, गाय आदि जानवर इन्सानों की तरह प्रकृति के सात रंग नहीं देख पाते। यहाँ तक कि स्पेन में जो साँड़ की लड़ाई होती है, उसमें साँड़ लाल कपड़े को देखककर नहीं भड़कता। बेचारे सांड़ को तो कपड़े का रंग सिर्फ मटमैला ही दिखाई देता है। असल में कपड़े को तेज़ी से हिलाने के कारण वह चिढ़ जाता है और दौड़ने लगता है।

अतः इसके अनुसार देखा जाए तो मीनू को दूध का रंग अवश्य मटमैला ही दिख रहा होगा। क्या मालूम, बिल्ली के लिए नीले रंग देखना संभव हो। शायद इसलिए वह दूध की तरफ संदेहभरी नज़रों से देख रही है।

अंततः गंध के सहारे मीनू ने फर्श पर पड़े दूध को धीरे से चाटा। फिर चप्-चप् की आवाज़ के साथ उसने पूरे दूध को चाटकर साफ़ कर दिया।

मीनू की नकल करते हुए राकेश ने गिलास के दूध को आँखें मूंदकर पी लिया। फिर एक घूँट पानी पीकर गिलास वॉश-बेसिन के पास रखा और अपनी किताबें खोलकर पढ़ने बैठ गया।

इतिहास की पुस्तक खोलते ही राकेश ने महसूस किया कि पढ़ना किसी तरह भी संभव नहीं। कारण यह है कि किताब के गाढ़े नीले पन्ने पर छपे

काले रंग के अक्षर ठीक से देख पाना मुश्किल था। राकेश उदास होकर हर किताब और कापी के पन्नों को उलट-पुलटकर देखने लगा। धत्! स्कूल जाकर भी अब क्या होगा! किताबें छोड़कर वह उठा और पिताजी की मेज पर पड़े ट्रांज़िस्टर को उठा लाया। स्विच ऑन करते ही विशेष घोषणा सुनाई दी : .... 'हर स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए, जब तक रंग अपनी स्वाभाविक दशा में नहीं आ जाते तब तक सभी स्कूल, कॉलेज, सरकारी व गैर-सरकारी संस्थान अनिश्चितकाल के लिए बंद रहेंगे। सरकारी माध्यम के अनुसार वैज्ञानिक इस आश्चर्यजनक घटना की छानबीन कर रहे हैं एवं परिवेश को स्वाभाविक परिस्थिति में लाने के लिए यथासंभव चेष्टा कर रहे हैं। आम जनता की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए वाहनों के लिए सभी सड़कें बंद कर दी गई हैं....।"

स्विच् दबाकर राकेश ने रेडियो बंद कर दिया। सामान्य रंगों में थोड़ी फेरबदल हो जाने से ही कैसा संकट आ गया है।

इसी बीच राकेश के पिताजी कमरे में घुसे और बोले, "राका, तुम्हारे स्कूल की छुट्टी है।"

राकेश ने देखा, पिताजी नीले रंग का मलमल का कुर्ता और नीली धोती पहने हुए हैं। शरीर का रंग गाढ़ा नीला है।

कुर्ता उतारकर एक तरफ रखते हुए राकेश के पिताजी ने फिर कहा, "बाज़ार में तो कोलाहल मचा हुआ है। अजीब-अजीब रंग की चीज़ें बेची जा रही हैं, नीली फूलगोभी, नीली रजनीगंधा, और मछली बाज़ार में तो काली रोहू मछली के टुकड़े दिखाई दिए।"

"पिताजी, मछली का रंग काला क्यों था?" राकेश ने प्रश्न किया।

पिताजी ने हँसकर कहा, "होगा क्यों नहीं? खून का रंग जो काला हो गया है। और हाँ, बाज़ार में सुना कि स्कूल, कॉलेज, परिवहन-सेवाएँ, दफ्तर, फैक्ट्रियाँ सभी कुछ अनिश्चितकाल के लिए बंद कर दिए गए हैं।

"हाँ, ठीक ही सुना है। अभी-अभी रेडियो में भी इसकी घोषणा की गई है।"

"देखूँ तो, रेडियो तो बढ़ाना ज़रा।"

राकेश ने रेडियो पिताजी को दे दिया। किताबों को समेटकर वह उठा और फिर बाल्कनी में जा खड़ा हुआ।

सामने वाले मकान की छत पर तीन गहरे नीले रंग के कबूतर बैठे हुए थे। उस घर में तपनदा कबूतर पालने के शौकीन हैं। एकटक उस तरफ देखते हुए राकेश सोच रहा था, सचमुच यह कैसा अजीब दृश्य है! सूर्य के सात में से छह रंग गायब हो जाने से कैसी विपत्ति आ खड़ी हुई है। सारी दुनिया ठहरकर रह गई है। रास्ते पर गाड़ी चलाना बहुत खतरनाक हो गया है। चारों तरफ सिर्फ नीले या काले रंग की चीज़ें ही नज़र आ रही थीं। इस परिवेश में गाड़ी चलाने का अभ्यास न होने के कारण ड्राइवर कहीं भी एक्सीडेंट कर सकते थे। कोई भी वाहन सड़कों पर न चलाने संबंधी रेडियो निर्देश के पीछे यही कारण रहा होगा।

सिनेमाघर भी शायद बंद होंगे। नीला रंग छोड़कर सभी रंग अगर गायब हो जाएँ तो रंगीन सिनेमा में और बचा ही क्या? और श्याम-श्वेत सिनेमा में भी यही समस्या। सफेद रंग तो समाप्त ही हो जाएगा। उसकी जगह रहेगा नीला, सिर्फ नीला रंग। ठीक यही दशा टी.वी. की भी होगी।

जब रंग मौजूद थे तब उन रंगों के महत्व को किसी ने नहीं समझा। किसी ने कल्पना भी नहीं की थी कि इनके न रहने से मनुष्य का जीवन गतिहीन हो जाएगा। अब पृथ्वी पर रहने वाले हम सबके आने वाले दिन कैसे कटेंगे - राकेश सोचने लगा।

शाम को राकेश को पिता से पता चला कि कलकत्ता के सब रंग की कम्पनीवाले कोई दूसरा काम करने की सोच रहे हैं। दुकानों में जितने भी रंग थे सब उलट-पुलटकर नीले या काले हो गए थे।

इधर, वृद्ध व्यक्तियों के बाल और दाढ़ी सब नीले रंग में बदल गए हैं और वे बहुत खूबसूरत लग रहे हैं। इसे देखकर उन लोगों के लिए बालों को तुरंत सफेद करने संबंधी कृत्रिम उपाय होने लगे थे। विभिन्न सैलूनों में काले बालों को सफेद करवाने

की होड़ सी लग गई है।

राकेश आश्चर्यचकित हो अपने पिताजी की बातों को सुन रहा था। उससे भी ज़्यादा चकित वह तब हुआ जब उसने रेडियो से यह समाचार सुना कि इस बीच दुनिया में कई लाख दुर्घटनाएँ हो चुकी हैं। हिमालय की बर्फ का रंग आकाश के रंग के समान नीला हो गया है, इसलिए सत्ताईस हवाई जहाज़ हिमालय की चोटियों से टकरा चुके हैं। भारतवर्ष में अब तक तीन पुरुष व एक महिला इस रंग बदलने के घटनाचक्र से घबराकर पागल हो गए हैं।

कई जगहों से इस तरह की घबरा देने वाली और भी अनेक दुर्घटनाओं का विवरण था।

राकेश का मन दुखी हो गया। वह धीरे-धीरे चलता हुआ बरामदे में जा खड़ा हुआ। शाम हो चुकी थी और अंधेरा हो चला था। लेकिन आकाश में चाँद-तारे कहाँ गए? गाढ़े काले रंग के आकाश में गाढ़े नीले रंग का चाँद था। वह ठीक दिखाई भी नहीं दे रहा था। और तारे? वे तो दिखाई न देने के बराबर। क्या इसी तरह बीतेगा हर दिन, हर रात?

राकेश वापस कमरे में लौट आया। कमरे में नीले रंग की बत्ती जल रही थी। ट्यूब और बल्ब दोनों ही नीली रोशनी दे रहे थे। पिताजी और माँ चुपचाप बैठे थे। माँ का चेहरा मटमैला नज़र आ रहा था। सुबह की चमक अब चेहरे पर मौजूद नहीं थी। पिताजी भी बड़े चिंतित जान पड़ रहे थे। रेडियो सामने रखा था। ऐसे में रेडियो के सिवा और चारा भी क्या था। किताब या अख़बार पढ़ना कठिन था। टी.वी. देखना भी संभव न था। इस तरह घर में बैठे-बैठे सब अपने आप में ही खीझ रहे थे।

पिताजी रेडियो पर संगीत का कार्यक्रम सुन रहे थे। अचानक राकेश की तरफ मुड़कर उन्होंने कहा, "राका, तुमने ध्यान दिया, रेडियो पर समाचारों को समाचारवाचक ठीक से पढ़ नहीं पा रहे थे। नीले कागज़ पर काले अक्षर पढ़ना लोहे के चने चबाने जैसा होता होगा उनके लिए।" राकेश धीरे से मुस्कराया।

माँ ने कहा, "फिर भी रेडियो के अलावा और चारा भी क्या है?"

राकेश ने पूछा, "पिताजी, ताज़ा समाचार में कुछ कहा है क्या?"

"हाँ, कहा है। अमेरिका के वैज्ञानिकों ने काफी छानबीन के बाद बताया है कि सूर्य में ही कुछ गड़बड़ है, जिसकी वजह से यह विचित्र घटना घटी है। अगले चौबीस घंटे के बाद ही वे निश्चित रूप से कुछ कह पाएँगे।"

मीनू राकेश के इर्द-गिर्द घूम रही थी। राकेश उसे गोद में लेकर प्यार से सहलाने लगा। फिर काले रंग का गेंद लेकर खेलने लगा। ऐसा लग रहा था मानो समय ठहर गया है।

इसी तरह रात के दस बज गए, किसी तरह खाना खाकर राकेश अपनी माँ के पास जाकर लेट गया। मीनू भी उससे सटकर लेट गई। पिताजी ने बगल के कमरे में जाते-जाते राकेश से कहा, "दिल छोटा मत करो राका। कल सबेरे उठकर देखोगे कि सब ठीक हो गया है।"

● ● ●

पिताजी की बात इतनी जल्दी सच हो जाएगी, राकेश ने यह कभी नहीं सोचा।

सुबह जब उसकी नींद टूटी तो वह हैरान रह गया। क्या उसकी आँखें गलत देख रही हैं। राकेश ने लेटे-लेटे ही कनखियों से चारों तरफ देखा। कमरे की दीवारों का रंग फिर से सफेद हो गया था। उसका अपना रंग भी फिर से गोरा हो गया।

खिड़की से सूरज की सुनहरी किरणें कमरे की शोभा बढ़ा रही थीं। घूमकर उसने देखा कि माँ नहीं है। वह तो बहुत पहले ही उठ चुकी होगी।

राकेश झट अपने बिस्तर से नीचे कूद पड़ा। वह बहुत खुश था। हे भगवान! अच्छा हुआ जो सब कुछ पहले जैसा हो गया था। लेकिन यह सब हुआ कैसे?

राकेश माँ को खोजता हुआ रसोई की तरफ दौड़ पड़ा। वहाँ पहुँचकर देखा कि पिताजी हाथ-पाँव हिलाते हुए माँ को कुछ समझाने की कोशिश कर रहे हैं। उनके एक हाथ में बाज़ार का सामान लाने वाले दो झोले थे। झोलों को ऊपर उठाते हुए

पिताजी समझा रहे थे, "सोचो यह सूर्य है। इस सूर्य से ही हमारी पृथ्वी पर सफेद रोशनी आती है।"

माँ ने बीच में ही टोका, "सफेद कहाँ वह तो पीली रोशनी है।"

राकेश को मजा आ गया, "सभी रंग फिर से बदल गए हैं पिताजी। लेकिन यह सारा बदलाव आया कैसे? रेडियो में क्या इस बारे में कुछ आया है?"

"अरे, वही तो मैं तुम्हारी माँ को समझाने की कोशिश कर रहा था। रेडियो ने जो कुछ संक्षेप में बताया, वह इस प्रकार है : परसों रात यानी तीस घंटे पहले सूर्य में एक भयानक विस्फोट हुआ था। उस विस्फोट के कारण एक अजीब-से विकिरण ने सूर्य को चारों तरफ से घेर लिया था। विकिरण ने सूर्य के प्रकाश से छह रंगों को सोख लिया। उसने सिर्फ नीली आभा को ही निकलने दिया। फलस्वरूप पृथ्वी की हर चीज़ नीली दिखाई पड़ रही थी। इसके सिवा इस विकिरण का प्रभाव सूर्य के सबसे निकटवर्ती तीन ग्रहों यानी बुध, शुक्र और पृथ्वी पर भी पड़ा। इसलिए हमारे कृत्रिम रोशनी के स्रोत यानी ट्यूब और बल्ब भी नीले रंग की रोशनी दे रहे थे।"

"लेकिन काला रंग?" चावल के बर्तन में कड़छी चलाते हुए राकेश की माँ ने पूछा।

जवाब दिया राकेश ने, "काला कोई रंग नहीं होता। अगर किसी चीज़ का कोई रंग न हो तो वह हमें काली दिखाई देती है।"

माँ का चेहरा देखकर पता चलता था कि राकेश के जवाब से माँ सन्तुष्ट नहीं है। इसे भाँपकर पिताजी ने कहा, "भारतीय समय के अनुसार पिछली रात साढ़े तीन बजे के करीब सूर्य के चारों तरफ जो विकिरण फैला हुआ था, वह महाशून्य में समा गया। फलतः शेष छह रंग फिर से दिखाई देने लगे तथा पृथ्वी के ऊपर से उस विकिरण का प्रभाव छँट गया। इसलिए अब ट्यूब और बल्ब की रोशनी में कोई गड़बड़ी नहीं रहेगी। हम सिनेमा व टी.वी. भी पहले की तरह देख सकेंगे।"

पिताजी ने बाज़ार के झोलों को नीचे करते हुए राकेश को धीरे से कहा, "राका, अब रंगों के विषय में अपनी माँ को संक्षेप में बता देना।"

राकेश को मज़ा आया और उसने सिर हिला दिया। हालाँकि माँ खाना बनाने में व्यस्त थी, फिर भी उसके कान उन दोनों की तरफ थे।

गला खँखार पिताजी कहने लगे, "ध्यान से सुनो! सूर्य की जो सफेद किरणें, तुम्हारे अनुसार पीली किरणें हैं, वैज्ञानिकों के अनुसार सफ़ेद किरणें ही हैं। यदि सफेद रोशनी के अलग-अलग भाग होकर बिखर जाएँ तो तुम्हें सात-सात रंग दिखाई देंगे। आकाश में इंद्रधनुष निकलने पर हम वही सात रंग अलग-अलग देख पाते हैं। दिन में हर चीज़ के ऊपर सफ़ेद रोशनी फैली रहती है, लेकिन फिर भी हम सभी चीज़ों को अलग-अलग रंगों में देख पाते हैं। ऐसा क्यों होता है? तुमने जो यह लाल रंग की साड़ी पहन रखी है, इसके बारे में सोचो। इसके लाल दिखने का कारण यह है कि इस लाल रंग ने

अन्य छह रंगों को सोख लिया है। सिर्फ लाल आभा को आने दिया है जैसे उस विकिरण ने सिर्फ नीले रंग को आने दिया था। जो चीज़ सभी रंगों को सोख लेती है, वह हमें काले रंग की दिखाई देती है तथा जो चीज़ (वर्णक्रम) स्पेक्ट्रम के सभी रंगों को वापस भेज देती है, वह हमें सफेद दिखाई देती है। जैसे मेरा यह धोती-कुर्ता, बर्तन के चावल। अब समझी ना!"

माँ ने कड़छी चलाते हुए कहा, "समझी, बहुत समझी! अब जल्दी जाओ और बाज़ार कर लाओ। कल तो आप नीला भात नहीं खा पाए, आज पेट भरकर सफेद भात खाकर आफिस जाना।"

पिताजी चल दिए। जाते-जाते कह गए, "कल अखबार नहीं पढ़ पाया। देखूँ तो, आज कोई विशेष समाचार छपा है कि नहीं....."

माँ ने राकेश से कहा, "क्या बात है राका! जाओ, जाकर पढ़ो।"

राकेश पढ़ने की मेज़ पर लौट आया। मीनू टेबल के नीचे चुपचाप लेटी हुई थी। खिड़की से आती धूप को देखकर राकेश बहुत खुश था। वह उठा और सीखचों से माथा सटाकर सूर्य की तरफ देखने लगा। आज सूर्य कितना खूबसूरत लग रहा है। इससे पहले कभी ऐसा नहीं महसूस हुआ। सभी ने सूर्य को घर की मुर्गी दाल बराबर समझ रखा है।

लेकिन आज तो वह एक नया सूर्य लग रहा था - पीली आभा के साथ झिलमिलाता हुआ।

अंग्रेज़ी से कमलेश सेन द्वारा अनुदित।
('बीता हुआ भविष्य' से नेशनल बुक ट्रस्ट के सौजन्य से साभार।)

सभी चित्र : विवेक

माथापच्ची : हल मार्च, 1998 अंक के

1. चित्र को घड़ी की सुई की दिशा में घुमाने पर वह ऐसा दिखेगा।
और तब बाईं ओर शीशा रखने पर इसका प्रतिबिम्ब ऐसा दिखेगा।

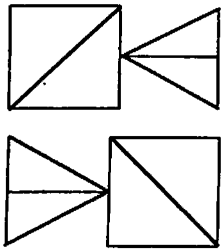

2. न ज़्यादा पानी शक्कर के घोल में मिला, न ज़्यादा शक्कर का घोल।

3.

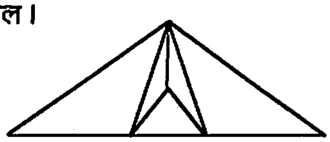

5. डिब्बा बनाने पर तीर इस तरह दिखेंगे।

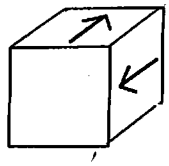

6. 6 रुपए के हिसाब से किराया देना पड़ रहा है, अगर वे 8 की जगह 12 लोग होते तो 4 रुपए के हिसाब से देना पड़ते।

7. सिर्फ़ एक घण्टा।

8. 40 वर्ग हैं।

अ		अ		गु	ला	ब		
व		प्र	या	ण		लि	बा	स
नी	ल	य		गा	ज			छ
		त्न		न		न		भो
अ		शी	त		रा	वी		ज
गु		ल		मे		नी		
बा			मों	छ		क	मा	ल
ई	पा	न		मा	छि	र		ती
		थ	का	न		ण		फा

वर्ग पहेली 79 का हल

वर्ग पहेली - 79 का सर्वशुद्ध हल भेजने वाले पाठक हैं – नेहा सिंगारे, सारणी, बैतूल; कमलेश्वर डहरे, गोसितराम डहरे, सोनापुटी, रायपुर; त्रिलोचन डहरे, डेजी डहरे, भिलाई, दुर्ग; रवि कान्त मित्तल, ब्यावरा, राजगढ़; म. प्र.। आप सभी को चकमक का अप्रैल का अंक उपहार में भेजा जा रहा है।

कोयल रानी

कू कू करती सुरीली आवाज़ इसकी
जहाँ उड़ जाती वहाँ मन को बहकाती
रंग है इसका काला
दिल को है प्यारा
फर फर कर उड़ती रहती
क्षितिज तक पहुँचने की कोशिश करती
ग्रीष्म में चलता इनका राज
दिन भर गाती रहती आ जाती रात
दिल में रखकर सबके दुख
सबको अलविदा करके हो जाती फुर

अजूरा, कटक, उड़ीसा

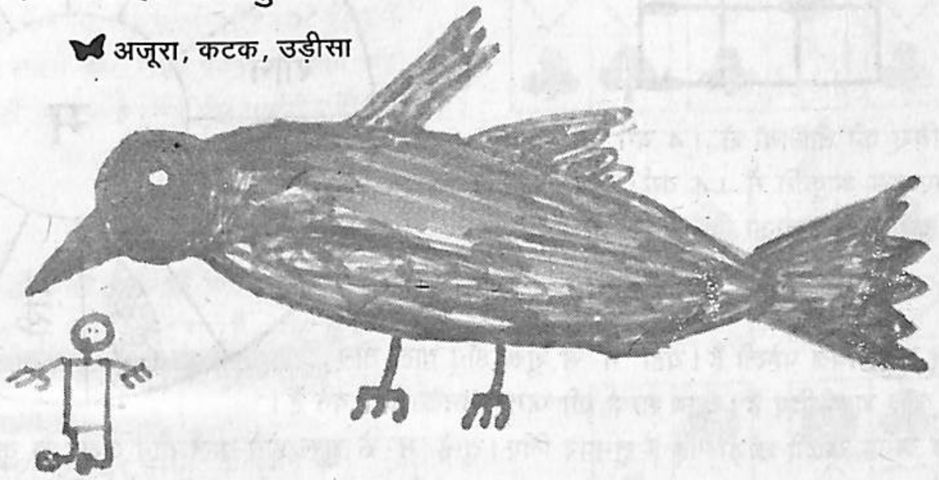

गिरिराज सिंह सिकरवार, पंचमपुरा, मुरैना, म. प्र.

कोयल

वसंत ऋतु में कोयल कू कू बोलती है
एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर डोलती है
जब पेड़ों पर होते हैं रस भरे फल
खाकर खट्टे मीठे फल
मधुर गाने लगती कोयल
वसंत ऋतु जब आती है
कोयल के मन में उमंग लाती है
और हम सबके मन में भी
एक नई आशा लाती है

कमल कुमार, आठवीं, हाटपीपल्या, देवास, म. प्र.

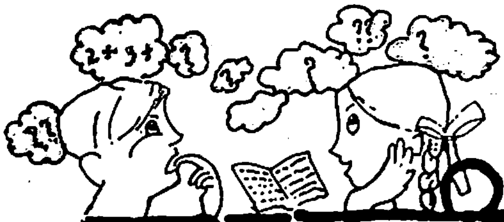

माथापच्ची

(1)

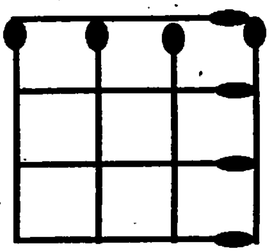

यहाँ 8 माचिस की तीलियों से 14 वर्ग बने हैं। क्या तुम ढूँढ पाए इस आकृति में 14 वर्ग? अब इसमें से 2 तीलियाँ इस तरह हटाओ कि 3 ही वर्ग बचें।

(2)

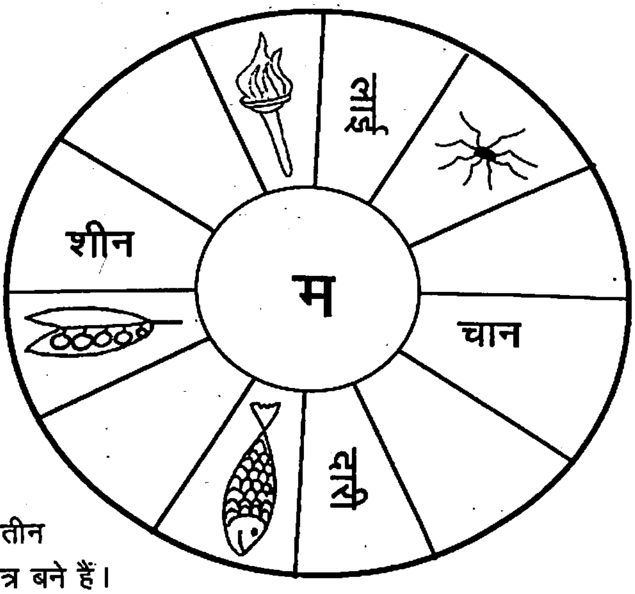

यह एक शब्द चित्र पहेली है। यहाँ 'म' से शुरू होने वाले तीन अक्षर के कुछ शब्द दिए हैं। कुछ शब्दों की जगह उनके चित्र बने हैं। और कुछ जगह ख़ाली छोड़ी गई हैं तुम्हारे लिए। तुम्हें 'म' से शुरू होने वाले तीन अक्षर के कुछ नए शब्द ख़ाली जगहों पर लिखना है, या फिर ऐसे ही शब्दों के चित्र बनाने हैं।

(3)

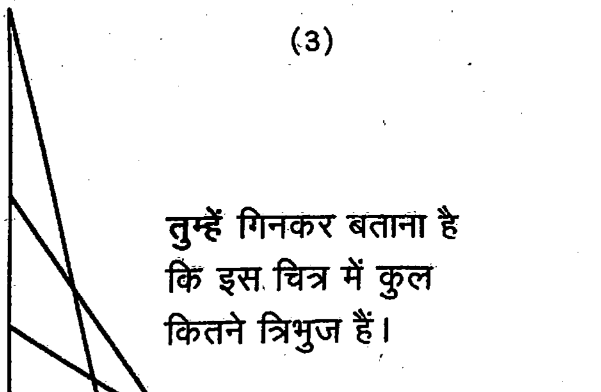

तुम्हें गिनकर बताना है कि इस चित्र में कुल कितने त्रिभुज हैं।

(4)

दो दोस्त सड़क पर आने-जाने वाले लोगों की गिनती कर रहे थे। एक अपने घर के दरवाजे पर खड़ा था। और दूसरा सड़क पर ही चहलकदमी करते हुए गिनती कर रहा था। चहलकदमी करने वाला गली के एक कोने तक जाकर वापस पलट जाता। फिर दूसरे छोर तक जाकर फिर पलट जाता। और जितने लोग उसके सामने से गुज़रते उन सबको गिनता। दूसरा अपने घर के दरवाज़े पर खड़े होकर बाएँ और दाएँ से आने वाले सभी लोगों को गिन लेता था। दोनों एक घण्टे तक यह खेल खेलते रहे। एक घण्टे के बाद इन दोनों की गिनती में क्या कुछ अन्तर आएगा? सोचकर बताओ।

(5)

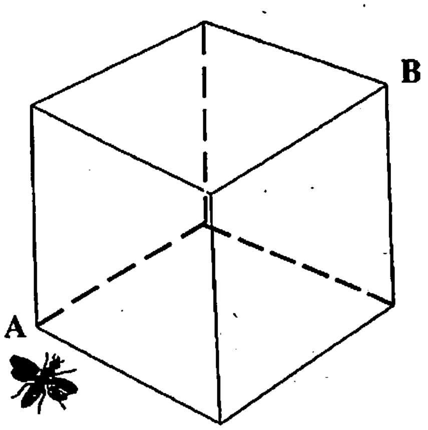

यह समझदार मक्खी उसके सामने रखे घन के एक कोने A से ठीक उल्टी तरफ के कोने B तक जाना चाहती है। पर वह यह भी चाहती है कि वह सबसे छोटे रास्ते से वहाँ तक पहुँचे। लेकिन सबसे छोटा रास्ता कौन-सा होगा, यह उसकी समझ में नहीं आ रहा है। क्या तुम मक्खी रानी की मदद करोगे?

(6)

यहाँ कुछ मुहावरे और लोकोक्तियाँ दिए हुए हैं। लेकिन इनके शब्दों के क्रम पलट गए हैं। क्या तुम शब्दों को सही क्रम में लगाकर सही मुहावरा या लोकोक्ति बना सकते हो?

1. और दाँत दिखाने के और हाथी, के खाने के।
2. भाड़ अकेला सकता चना नहीं फोड़।
3. उंगली निकालना घी से टेढ़ी।
4. एक दो निशाने से तीर लगाना।
5. अब आज आज करे करे सो सो काल कर।

(7)

नीचे के चित्रों में चार-चार वर्गों में बँटे हुए बड़े वर्ग दिए हैं। इनमें एक ख़ास क्रम में कुछ बदलाव आते जा रहे हैं। इस क्रम को पहचानकर क्या तुम बता सकते हो कि सातवाँ वर्ग कैसा होगा? मदद के लिए चार वर्ग दिए हैं। इन्हीं में से सही जवाब चुन सकते हो।

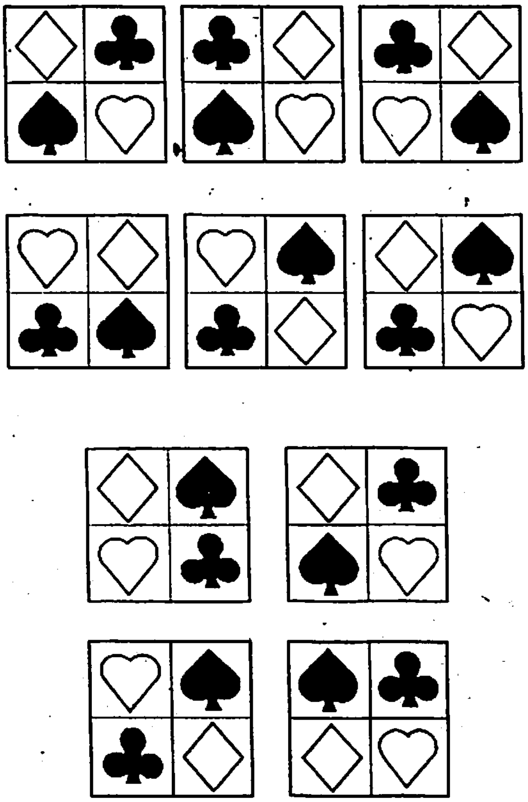

(8)

पहले दो गोलों में दिए अंकों / संख्याओं को ध्यान से देखो। इनमें कुछ आपसी रिश्ता है। उसे ढूँढकर बताओ कि उसके मुताबिक तीसरे गोले के बीच में कौन-सी संख्या आएगी?

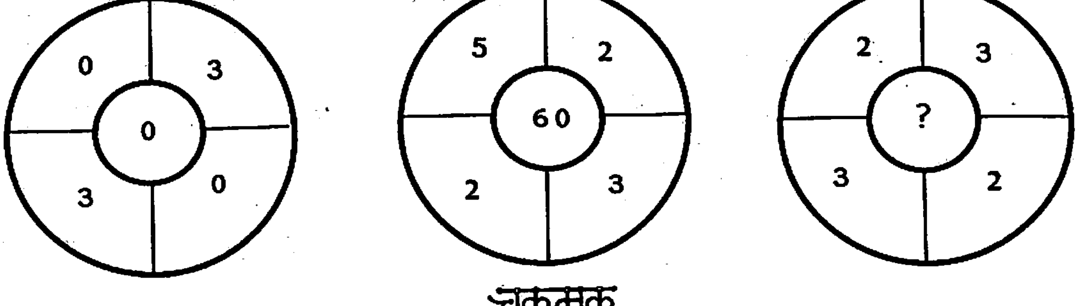

गेंद

भैया देखो गेंद हमारी
पाली-नीली गेंद हमारी
टप-टप करती टप्पा खाती
दौड़े पीछे हमें भगाती
हल्की फुल्की गेंद हमारी
हवा में उछले गेंद हमारी

विजय राठौर, आठवीं, अवल्दामान

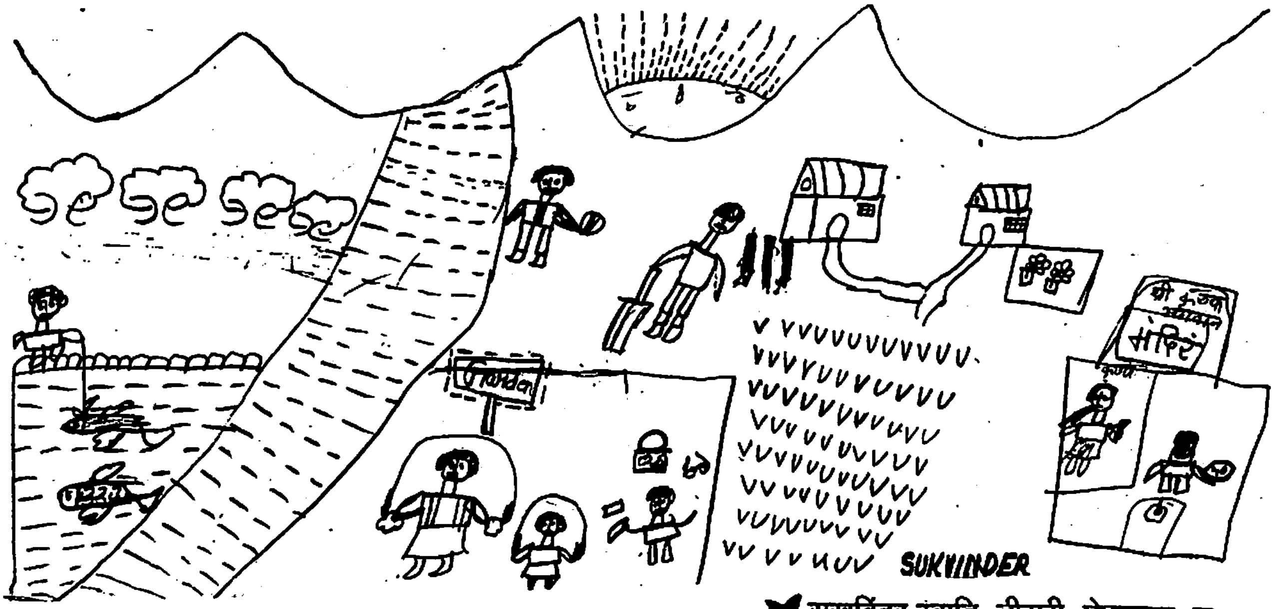

सुखविंदर स्वाति, तीसरी, देहरादून, उ. प्र.

हमने मतीरे खाए

बात थोड़े ही दिनों की है तब मैं कक्षा 5 में पढ़ता था। एक बार हम सब मित्र मिलकर एक कुम्हार के खेत पर गए। उस खेत में काफी मतीरे थे। तब हमने सोचा कि क्यों न हम मतीरे खाएँ। फिर हम सब खेत में घुस गए। अभी हमने पाँच ही मतीरे खाए थे कि अचानक खेत का मालिक आ धमका। फिर हमको पकड़ लिया व पेड़ के साथ बाँध दिया। और डंडे से पिटाई की। फिर हमें छोड़ दिया, हमें खोलते ही हम भाग आए।

बिरजाराम, खारबारा, राजस्थान

स्मृति वर्मा, शहडोल, म.प्र.

सुनील कुमार, सातवीं, धार, म.प्र.

पंजीयन क्रमांक 50309/85 के अन्तर्गत भारत के समाचार पत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा पंजीकृत। डाक पंजीयन क्रमांक BPL/DN/MP/431/98

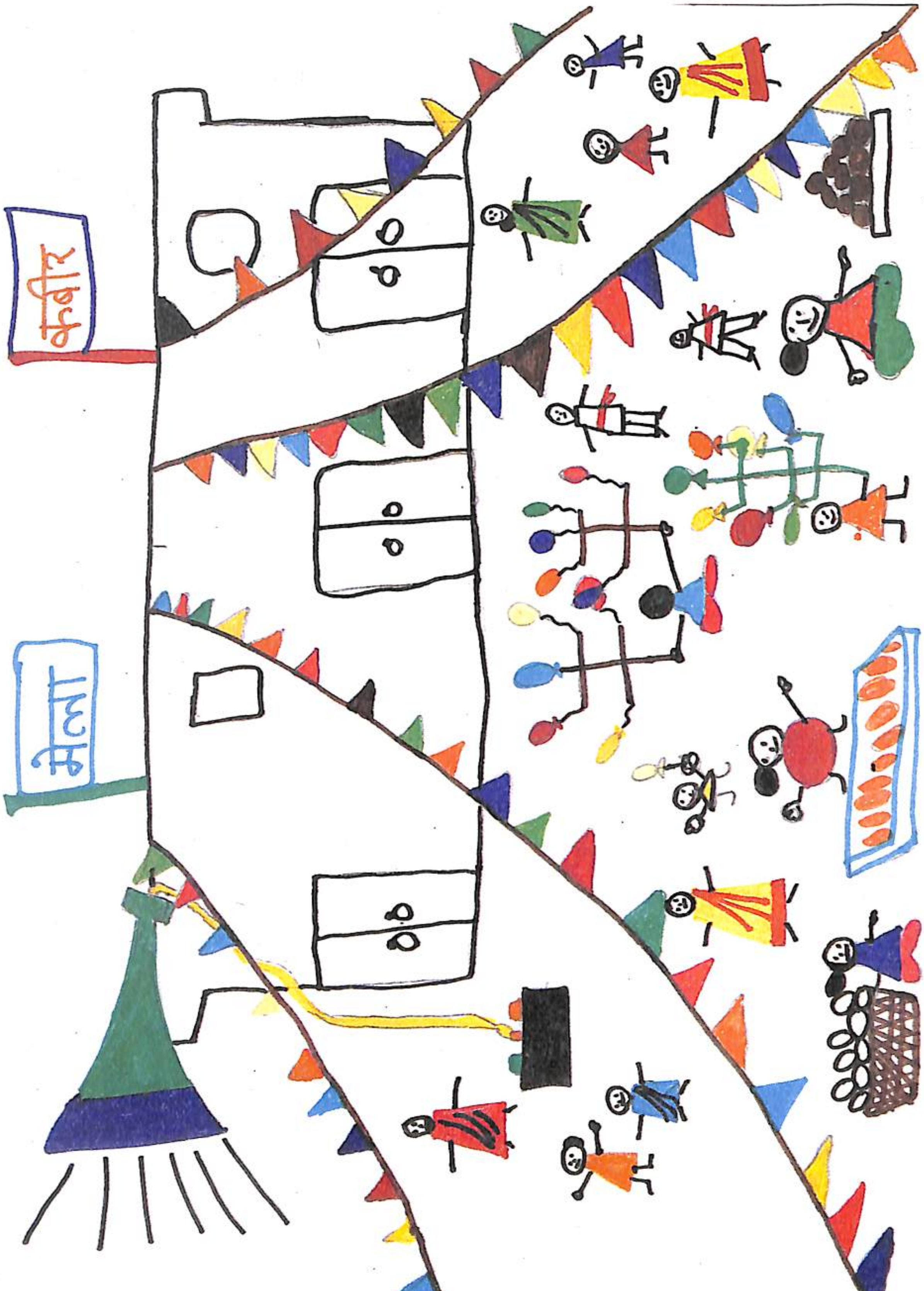

कबीर सागर घोष, चन्द्रा, बोकारो, बिहार

रेक्स डी रोज़ारियो की ओर से विनोद रायना द्वारा राजकमल ऑफसेट प्रिन्टर्स, भोपाल से मुद्रित एवं एकलव्य, ई-1/25, अरेरा कालोनी, भोपाल-462 016 से प्रकाशित।
संपादक : विनोद रायना